बिनती

प्राणों का है प्राण पिता तू, जीवन का है आधारा।
निर्भर यह ब्रह्मांड है तुझ पर, तू है सब का रखवारा।।
तू है जोत नैन की सब के, तू है घट घट का वासी।
अन्तरयामी प्रीतम प्यारा, अजर अमर विभु अविनासी।।
जल में तेरी शीतलता है, तेज में है प्रकाश तेरा।
वायु में है तेरी शक्ति, और आकाश में भास तेरा।।
तू है एक अनेक रूप में, अगम अगोचर निर्माया।
यह ब्रह्मांड तेरी है काया, फिर भी तू है निरकाया।।
बिन पग चलत सुनत बिन काना, बिन जिभ्या वाचाल है तू।
माया मोह से रहित निरन्तर, सब जग का प्रतिपाल है तू।।
तू है देस निमित भी तू है, और कहूं क्या काल है तू।
जड़ चेतन है कारन कारज, करूणा मय कृपाल है तू।।
फूल फूल में बास है तेरी, मेंहदी में है तू लाली।
चकमक में ज्यों आग छुपी है, एक तिल नहीं तुझसे खाली।।
दया सिंधु है दीनबन्धु है, भक्त जनन का हितकारी।
सृष्टि प्रलय लीला है तेरी, तू है हलका तू भारी।।
तू व्यापक तू अविच्छिन्न है, तू सब में सब हैं तेरे।
सब में रमा अलग है सब से, सब से दूर सब से नेरे।।
रोम रोम में गुप्त हुआ है, अणु अणु में प्रगट है तू।
हृदय गुफा में बास है तेरा, जीव जन्तु का घट है तू।।
महिमा अनिमा लघिमा गरिमा, हैं अनेक यह तेरे रूप।
तू सेवक है तू स्वामी है, तू है परजा तू है भूप।।
क्या माँगूँ तुझसे मैं स्वामी, तू मेरा मैं हूँ तेरा।
खोजूँ क्यों मैं देस देस में, हिये में है तेरा डेरा।।

VISIT US ON:
www.akhandmanavtadham.in

परम संत हुजूर शब्दानन्द जी महाराज

होशियारपुर में सतसंग देते हुए

परम संत हूजूर शब्दानन्द जी महाराज के भौतिक शरीर छोड़ने पर उनके भौतिक जन्म–दिवस पर विशेषांक

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय वस्तु	पेज सं.
1	श्रद्धांजलि परम संत फकीर फाउंडेशन ट्रष्ट	4–5
2	श्रद्धांजलि अखण्ड मानवता प्रतिष्ठान न्यास	5–6
3	हुजूर शब्दानन्द जी महाराज का जीवन परिचय	7–18
4	क्रांति–युग– हुजूर शब्दानन्द जी महाराज	19–36
5	हुजूर पुष्कर दयाल जी के विचार	37–40
6	आचार्य अरविन्द पराशर जी के विचार	41–46
7	आत्मा की भाषा का नाम शब्दानन्द	47–53
8	हुजूर शब्दानन्द जी की लेखनी से	54–64
9	हुजूर मानव दयाल जी के विचार	65–66
10	श्री पवन मल्हन जी, होशियारपुर के विचार	67–76
11	आचार्या मातृवत् रत्ना पंडित जी के विचार	77–81
12	आचार्य आनन्द प्रकाश त्यागी जी के विचार	82–86
13	हुजूर शब्दानन्द जी के चार धाम–जन. सेक्रेटरी.	87–90
14	श्रीमती पीनू दत्त, फरीदाबाद के विचार	91–94
15	श्री प्रेम सुख बल्लबगढ़ के विचार	95–98
16	आदि–अंत का मर्म–'शब्दानन्द', एन.पी.एस. त्यागी	99–101
17	प्राणों का प्राण पिता तू–दयाला राय, बलिया	102–111
18	आचार्या मातृवत् रत्ना पंड़ित जी के विचार	112–117
19	जयश्री खमेशरा, एफ. सी. ए. के विचार	118–120
20	आचार्या बहन निर्मला, फरीदाबाद के विचार	121–123
20	आचार्य श्री गजेन्द्र सिंह त्यागी जी के विचार	124–126
21	आचार्य श्री केदार लाल गौड जी के विचार	127–130
22	आचार्य श्री रविन्द्र जी, अलीगढ़ के विचार	131–136
23	श्री विरेन्द्र, बल्लभगढ़ के विचार	137–140
24	डा0 के0 पी0 सिंह, बल्लभगढ़ के विचार	141–143
25	आचार्य श्री देशराज जी के विचार	144–145
26	अपील	146
27.	धुरपदधाम, दुर्गापुर से सम्बद्ध आचायों की सूची	147

परम संत फकीर फाउंडेशन ट्रस्ट, होशियारपुर

आर–51, माडल टाउन
होशियारपुर

दिनांक 20.03.14

आज दिनांक 20.03.14 दिन गुरूवार को बाद दोपहर 4.00 बजे परम संत फकीर फाउंडेशन ट्रस्ट, होशियारपुर ने डॉ के.के.शर्मा की अध्यक्षता में परम श्रद्धेय परम संत पूज्य श्री शब्दानन्द जी महाराज के प्रयाण की सूचना प्राप्त होते ही शोक सभा का आयोजन किया। परम श्रद्धेय परम संत पूज्य श्री शब्दानन्द जी महाराज एक विदेह–संत थे। इन्होंने परम संत पंडित फकीर चन्द जी महाराज एवं परम संत डॉ ईश्वर चन्द्र जी महाराज मानव दयाल जी की संगति में अपने आध्यात्मिक जीवन को आरम्भ किया। निरंतर साधनात्मक श्रेष्ठताओं को अर्जित करते हुए पूज्य श्री शब्दानन्द जी ने शब्द और प्रकाश की साधना में शब्द सुरत योग के द्वारा अपना आत्म तत्व निहित और स्थिर कर लिया है।

परम श्रद्धेय परम संत शब्दानन्द जी महाराज की प्रेममयी तपश्चर्या पूत साधना, शुद्ध सद्गुरू समर्पित चेतना ने राधास्वामी मत के समस्त आध्यात्मिक साधना के सिद्धांत वाक्यों को वैयक्तिक आधार पर प्रयोगात्मक रूप से स्वयं सिद्ध कर लिया था। उनकी संगति में निवसित सभी सत्संगी उनके देह और मन से निःसृत रश्मियों की आकर्षण शक्ति के द्वारा अपनी चेतना की उन्नत अवस्था को अनुभव करते हैं। अत्यंत वृद्धावस्था में भी उनकी चेतना परमतत्वाधार से जुड़ी रही है।

परम पूज्य श्रद्धेय परम संत शब्दानन्द जी महाराज श्रेष्ठ साधक, श्रेष्ठ विचारक, श्रेष्ठ कवि और श्रेष्ठ सुचिंतक हैं। उनकी रिक्ति–पूर्ति सम्भव नहीं है। परमतत्वाधार परम दयाल और मानव दयाल जी की परम प्रज्ञा से अभिषिक्त पूज्य शब्दानन्द जी सर्वाधार में तल्लीन हो गये हैं।

हम प्रार्थना करते है कि परम संत की प्रज्ञापूर्ण चेतना हमारा भी आध्यात्म–मार्ग प्रशस्त करती रहेगी।

राधास्वामी!

के.के.शर्मा पी.पी.मल्हन बी.एन कौशल
अरविन्द पराशर मोहन लाल बग्गा

अखण्ड मानवता प्रतिष्ठान संस्थान न्यास
COSMIC HUMANITY FOUNDATION TRUST

धुरपद धाम, दुर्गापुर
जिला पलवल, हरियाणा

दिनांक 20.03.2014

परम संत परम पिता हुजूर शब्दानन्द महाराज जी के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि

अखण्ड मानवता प्रतिष्ठान संस्थान धुरपदधाम दुर्गापुर, जिला पलवल (हरियाणा) के समस्त सदस्य एवं मानवता परिवार से जुड़े सभी श्रद्धालु सत्संगी अपने दयालु मुर्शिद, रहनुमा और पथप्रर्दशक परम पुरूष पूरण धनी परमतत्वाधार मालिके–कुल पुरनूर हुजूर शब्दानन्द जी महाराज जो अपने सत्संगियों और गुरू के प्रति पूर्ण समर्पित थे, के इस भौतिक नाशवान शरीर को दिनांक 20.03.2014 प्रातः 1:30 पर इस धरा को छोड़कर निज धाम प्रस्थान करने पर जो अपूर्णीय क्षति उनके परिवार के सदस्यों, संबंधियों, परिचितों को हुई है पर हार्दिक संवेदना और शोक प्रकट करते हुये राधास्वामी दयाल से विनती करते हैं कि उनकी अपनी सबसे प्रिय विशुद्ध आत्मा को अपने चरणों में सदा–सदा के लिए स्थान दें, जिसकी वह हकदार है। क्योंकि स्वयं राधास्वामी दयाल ने ही उस विशुद्ध आत्मा को अपनी ही मौज से अपने ही रूप में इस धरा पर जगत कल्याण

करने के लिए भेजा था। अब वह उन्हीं की मौज से अपने ही स्वरूप में विलय हो चुकी है। अतः हम सब सामूहिक रूप से राधास्वामी दयाल से यही विनती करते हैं कि व्यावहारिक रूप से हुजूर शब्दानन्द महाराज जी के परिवार के सदस्यों को इस विषम परिस्थिति में सम्बल दें और इस अपूर्णीय क्षति को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

वैसे तो सन्त का न कभी जन्म होता है और न सन्त की कभी मृत्यु होती है, वह तो अनामी धाम से बंधनमुक्त होते हुये भी मनुष्य के चोले में दीन–दुखियों को सही रास्ता बताने के लिए और उन्हें संसार के तीन तापों से छुटकारा दिलाने के लिए स्वेच्छा से बंधन में बंधता है और अपना दायित्व पूरा करके जब वापस अपने धाम को जाता है तो अपने मिशन को आगे बढ़ाने के लिए अपनी मशाल दूसरे सशक्त संत को सौंप कर जाता है। हमारे पूजनीय एवं प्रातः स्मरणीय महाराज जी अपने सत्संगों में प्रायः ऐसा ही फरमाया करते थे। वे शरीर, मन और आत्मा में रहते हुए भी सदैव इनसे परे अपने निज स्वरूप में रहते थे। अर्थात् वे आम आदमी की तरह इनके प्रति कतई आसक्त नहीं थे। अतः **उनके प्रति सही श्रद्धांजलि यही होगी कि उनके शरीर को याद करने की बजाय हम उनकी शिक्षा, उनके बलिदान, उनकी उत्तम करनी और रहनी को याद करें, उनके द्वारा दिये गये ज्ञान का प्रचार करें और उनके द्वारा शुरू किये गये मिशन को आगे बढ़ाये, तभी उनकी आत्मा को परमशांति प्राप्त होगी।**

इस संस्थान से जुड़े हम सभी सदस्य एवं सत्संगी एक जुट होकर मौअल्ला मुकद्दस हुजूर शब्दानन्द महाराज जी के परिवार के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हैं और सदा खड़े रहेंगे तथा उनके मिशन को आगे बढ़ाने के लिए कृत संकल्प हैं।

मालिक सबका कल्याण करे!

हम हैं अखण्ड मानवता प्रतिष्ठान, धुरपद धाम दुर्गापुर पलवल हरियाणा के सभी सदस्यगण।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज का जीवन परिचय

दाता दयाल जी महाराज के अनन्य प्रेमी भक्तों में से एक परम भक्त श्रीमान् गोपाल नारायण राय जी थे और उनकी पत्नी को हुजूर दाता दयाल जी महाराज "भाग्यवती" / "दयाल की माई" कहकर पुकारते थे। श्रीमान् गोपाल नारायण जी के पिताश्री गोपाल प्रसाद साहिब हुजूर राय सालिग्राम साहिब, (हुजूर महाराज) जी के शिष्य थे। ऐसे परिवार में एक समर्थ शिशु का जन्म 3 अक्टूबर 1923 को बलिया जिले में हुआ था। चूंकि घर–परिवार में चारों ओर सदियों से अध्यात्मिकता का वातावरण था, इसलिए इस अवतारी शिशु का नाम हुजूर दाता दयाल जी महाराज ने मालिक के रूप और नाम की अभिव्यक्ति पर "शब्दानन्द" रखा, जिनको हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने अपना 'जां–नशीन' बनाया।

इन्होंनें हुजूर दाता दयाल जी महाराज की उंगली पकड़ कर चलना सीखा और नवीं कक्षा पास करके 14–15 वर्ष की आयु में परम संत हुजूर बाबा फकीर की छत्र–छाया में आ गये। ये कहते हैं कि इनके पिता जी ने इनको दाता दयाल जी दिये क्योंकि इनके पिता जी इन्हें दाता दयाल जी के पास ले जाते थे। एक बार इनके पिता जी ने सत्संग के बाद इन्हें दाता दयाल जी को एक भजन सुनाने को कहा। इन्होंने सुना दिया। दाता दयाल जी बहुत खुश हुये और इन्हें ढ़ेरों आशीर्वाद दिये और कहा, "जा पास हो जाएगा।" फिर तो ये पास होने का आशीर्वाद लेने अक्सर दाता दयाल जी के पास जाया करते थे और कक्षा नौ तक उनके आशीर्वाद से कभी फेल नहीं हुये। और देखिये! उस समय उस महान विभूति के सामने एक भजन सुनाने का क्या फल इनको मिला? उनकी अहैतुकी कृपा से इनका सुर और ताल इतना मधुर हो गया कि अच्छे–अच्छे गायक भी भजन गाने में इनकी तुलना नहीं कर सकते। उसी आशीर्वाद के सम्बल से बड़े होने पर ये कवि–सम्मेलनों एवं मुशायरों में भी कविता पाठ करने जाते थे।

ये कहते हैं कि इनकी माताश्री ने इन्हें परम दयाल जी दिये। वो कैसे? इनकी ही जुबानी सुनिये–'फरवरी 1940 में मैं इलाहाबाद में हाई स्कूल की परीक्षा की तैयारी कर रहा था, माता जी साथ ही रहती थीं। चूंकि दाता दयाल जी चोला छोड़ चुके थे इसलिये परीक्षा में पास होने का आशीर्वाद न मिल पाने से मन में कुछ परेशानी थी। सुबह लगभग चार बजे माता जी ने मुझे जगाया और कहा कि अभी–अभी समाधि में पता चला है कि परम दयाल जी इलाहाबाद आये हुये हैं। तू मुझे उनके दर्शन करा दे। मैंनें साईकिल उठाई और रेलवे स्टेशन गया परंतु वे वहाँ नहीं मिले, लौटते हुये मैंनें एक धर्मशाला में पूछा तो पता चला कि पंजाब से एक संत आये तो हैं। मैंने ज्यों ही उन्हें देखा तुरंत माता जी को उनसे मिलाने ले आया। फिर माता जी उन्हें घर ले गयीं। उन्होंनें जब मुझसे मेरी परेशानी का कारण पूछा तो मैंनें साफ कह दिया कि मुझे परीक्षा में पास होने का आशीर्वाद चाहिये। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रख कर कहा जा पास हो जाएगा और मैं पास हो गया।'

ये आगे कहते हैं कि हाई स्कूल पास करने के बाद ये परम दयाल जी से मिलने होशियारपुर गये। जब होशियारपुर पहुंचे तो पता चला कि परम दयाल जी तो फिराजेपुर में रहते हैं। इन्हें तो कुछ पता नहीं था कि फिरोजपुर कहां है? ये तो होशियारपुर भी पहली बार न जाने कैसे–कैसे पहुंचे थे। शाम हो चुकी थी ये परेशान हुए कि क्या किया जाए तभी एक छोटा सा लड़का इनके पास आया और उसने कहा कि फिरोजपुर का पता सामने होटल वाला आपको बता देगा। ये उसके पास पहुंचे और जब बताया कि इलाहाबाद से बाबा फकीर को मिलने आये हैं तो उसने इनकी उम्र तथा लड़कपन को देखते हुए कहा कि पुत्तर पहले तो खाना खा ले और रात को नौ बजे यह ट्रक वाला फिरोजपुर जाएगा और तुझे इस पते पर पहुंचा देगा। उसने ट्रक वाले को कहा कि इसे बाबा फकीर के पास फिरोजपुर पहुंचा देना और पैसे नहीं लेना। यह हमारा बच्चा है। जब ये बाबा फकीर के पास पहुंचे तो उन्होंने पूछा कि कैसे और क्यों आया है? इन्होंने बता दिया कि कैसे–कैसे वहां

पहुंचा है और यह भी कहा कि भक्ति करने आया है। उन्होंने कहा कि तू भक्ति नहीं कम्बख्ती करने आया है? मां को पूछ कर आया है? नहीं। तो बाबा फकीर को दुख हुआ। उन्होंने कहा कि लौट जा, तो इन्होंने कहा कि अब तो कुछ दिन रह कर ही जाऊंगा। फिर ये बीमार हो गये और बाबा फकीर इनकी सेवा करने लगे। तब इनको ग्लानि हुई और कहा कि मैं वापिस जा रहा हूं। बाबा फकीर ने इनका टिकट मंगा कर दे दिया और इन्हें रेल गाड़ी में बैठा दिया। साथ ही यह हिदायत दी कि 'अपनी मां की सेवा किया कर वह तेरी गुरू है। उसकी सेवा मुझे लग जायगी। दूसरे जब तक तेरी शादी न हो जाये सिनेमा नहीं देखना।'

ये आगे कहते हैं कि इन्होंने ताउर्म इन दो बातों का गुरू आज्ञा या नाम दान समझ कर जी–जान से पालन किया। आगे कहते हैं कि परम दयाल जी ने इन्हें मानव दयाल जी दिये। वो ऐसे कि एक बार परम दयाल जी ने अपने सत्संग के बाद कहा, "ऐ सत्संगियों! मांग लो क्या मांगते हो? आज तुम जो भी संकल्प करोगे पूरा हो जायगा।" सत्संग के बाद जब परम दयाल जी भोजन करने बैठे तो दही की फ़रमाइश की। ये दरवाजे पर ही खड़े थे अतः दौड़ कर बाजार से मिट्टी के कुल्हड़ में दही ले आये और उन्हें पेश की। वे बहुत खुश हुये और दो चम्मच खाकर कुल्हड़ इन्हें वापस कर दिया और बोले, "शब्दानन्द तेरा संकल्प भी पूरा होगा, परंतु अभी समय लगेगा।" इन्होंनें सोचा ये तो टाल गये क्योंकि इन्होंनें सेवा मांगी थी। जब इन्हें पता चला कि परम दयाल जी चोला छोड़ गये हैं तो ये बहुत परेशान हुये और गुमसुम रहने लगे और बीमार पड़ गये और जैसा कि माता जी बतलाती हैं कि ये बीमारी की गफलत में यही बड़बड़ाते रहते थे कि 'गुरूदेव, मैं आपकी सेवा नहीं कर सका।' परंतु जब ये पहली बार हुजूर मानव दयाल जी से बनारस में होटल में मिलने गये और मानव दयाल जी ने इन्हें देखा तो कहा, "ऐ मिस्टर! तुम्हें मेरे साथ रहना है और बहुत काम करना है तब इन्हें लगा कि परम दयाल जी ही मानव दयाल के रूप में सेवा लेने आये हैं। इस प्रकार ये

कहते हैं कि हुजूर परम दयाल जी महाराज ने इन्हें मानव दयाल जी दिये।

ये कहते हैं कि परमदयाल जी महाराज जब भी सत्संग के दौरे पर जाते थे तो किसी की लाई हुई कोई चीज नहीं खाते थे। उन्होंने यह हिदायत उन लोगों को दे रखी थी जो उनका भोजन बनाते थे। जब शब्दानन्द जी महाराज जाते थे तो ये भी कुछ न कुछ लेकर जाते थे। एक बार उन लोगों ने कहा कि महाराज जी ने मना कर रखा है कि किसी की कोई भी लाई हुई चीज उन्हें न दी जाए। इन्होंने कहा कि कोई बात नहीं आप रख लो और जब महाराज जी खाना खाने बैठे तो उन्हें देना मत, मगर उनसे कह देना कि शब्दानन्द भी कुछ लाया था हमने उसे अलग रखा हुआ है। ऐसा ही हुआ, तो परमदयाल जी ने झट से कहा, इस खाने को हटाओ और उसको लाओ जो शब्दानन्द लाया है। थोड़ी देर में बात फैल गई और जो परमदयाल जी के अन्य प्रेमी थे जो अपने को उनका नजदीकी मानते थे ने शिकायत की कि महाराज जी आप हम में से किसी की लाई हुई कोई चीज नहीं खाते और ये दो दिन का छोकरा जो भी लाता है उसे बड़े प्रेम से खाते हो। बाबा फकीर बोले तुम मुझे क्या समझते हो और जिसे तुम दो दिन का छोकरा कहते हो वह मुझे क्या समझता है? कभी सोचा है तुमने! तुम कभी मेरा हालचाल पूछने होशियारपूर आये? यह छोकरा बालक होते हुए भी मुझसे मिलने फिरोजपुर गया था, कुछ समझ कर ही गया था ना! अब इसकी भावना को मैं कैसे ठेस पहुंचा सकता हूं?

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज कहते हैं कि जब परम दयाल जी महाराज अमेरिका में मर्सी हॉस्पीटल में भर्ती थे और ड़ा0 रामदेव राव उनका इलाज कर रहे थे और मानव दयाल जी 100–150 मील चलकर अपनी ड्यूटी के बाद शाम को उनकी सेवा करने आते थे तब उसी समय इनको लगा कि परम दयाल जी राधास्वामी धाम आ रहे हैं। ये तुरंत बलिया से रेलगाड़ी में बैठकर बनारस आये और लगभग सुबह के नौ बजे राधास्वामी धाम गोपीगंज पहुँच गये। उस समय उनके बड़े भाई साहब भी वहाँ मौजूद थे। ये बताते हैं

कि उनके गुरू हुजूर बाबा फकीर ने दिन–दहाड़े (ब्रोड़–ड़े लाइट) में उन्हें राधास्वामी धाम पर साक्षात् दर्शन दिये; उनसे बात भी की और कहा, "दयाल की माई कहां है मैं उससे मिलने आया हूँ। मेरे पास ज्यादा वक्त नहीं है, यह पुड़िया दयाल की माई को दे देना।" जब वे उस पुड़िया को शब्दानन्द जी को देकर लौटने लगे तो कुछ दूर तक ये भी उनके पीछे–पीछे चले। फिर उन्होंने जरा ठहर कहा, "शब्दानन्द तू अभी तक अधिकारी नहीं बना है, हाँ अन्तिम समय में तू मेरी गोद में आ जावेगा।" यह कहकर वे अर्न्तध्यान हो गये। यह दृश्य देखकर हुजूर शब्दानन्द जी महाराज कहते हैं कि उनको महान आश्चर्य हुआ और उनके शब्द सुनकर दुःख भी हुआ। आश्चर्य इस बात पर हुआ कि उस समय बाबा फकीर मर्सी हॉस्पिटल, अमेरिका में भर्ती थे और ड़ा0 राम देव राव उनका उपचार कर रहे थे ऐसी हालत में उन्होंने धाम पर आकर उन्हे कैसे साक्षात् दर्शन दिया और दुःख इस बात का कि उन्होंने यह क्यों नहीं बताया कि अधिकारी कैसे बनना है?

सन् 1981 में जब ड़ा0 आई0 सी0 शर्मा मानव दयाल जी महाराज अपने गुरू की आज्ञा पालन हेतु अमेरिका से अपने रिटायरमेंट से 9 वर्ष पूर्व ही त्यागपत्र देकर स्थाई रूप से भारतवर्ष आ गये थे और एक अमेरिकन ड़ेलीगेशन के साथ बनारस पहुँचे तब श्री शब्दानंद जी ने यह सूचना एक स्थानीय समाचार पत्र में पढ़ी और उनसे मिलने होटल में पहुँच गये। यद्यपि ये एक दूसरे को नहीं जानते थे न कभी देखा था परंतु ज्यों ही इन्होंनें उनके गले में माला ड़ाली और पाँव छूने को झुके त्योंही ड़ा0 शर्मा ने इनसे कहा, "ऐ मिस्टर! तुम्हें मेरे साथ रहना है और महान कार्य करना है।" ये कहते हैं कि भारतवर्ष में हुजूर मानव दयाल जी से मिलने वाले उस समय ये पहले व्यक्ति थे। पहली ही मुलाकात में हुजूर मानव दयाल जी के मुख से ये शब्द सुनकर इन्हें आश्चर्य भी हुआ और खुशी भी।

कुछ समय पश्चात जब श्री शब्दानन्द जी हुजूर मानव दयाल जी से मिलने लखनऊ में आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी जी के निवास स्थान पर गये तो हुजूर मानव दयाल जी ने इनको देखते

ही इनसे पूछा, "क्या हमारे साथ होशियारपुर चलोगे?" यह बात सुनकर ये एक बार फिर आश्चर्य चकित हो गये और मन ही मन सोचा कि इनको कैसे मालूम कि हम अभी–अभी रिटायर हुये हैं और यही इच्छा लेकर तो आये हैं। उस समय इन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि हुजूर मानव दयाल जी तो बाबा फकीर का ही रूप हैं और इन्होंने तुरंत हाँ कह दी। जब हुजूर मानव दयाल जी ने इनसे कहा कि घर जाकर सलाह कर लो और 10–15 दिन बाद सामान लेकर आ जाना। इन्होंने कहा, "हुजूर घर–बार तो अब बहुत पीछे छूट गया, हम तो अभी से आपके साथ, आपकी सेवा में तत्पर हैं।" जब ये हुजूर मानव दयाल जी के कहने पर बलिया अपना सामान लेने गये तब इनके बच्चों (तीन लड़के और एक लड़की) ने कहा, "पिता जी आप जा रहे हैं हमारी पढ़ाई का क्या होगा?" इन्होंने कोई उत्तर न देकर अपना सामान उठाया और चल दिये। उस समय तक किसी भी बच्चे की पढ़ाई पूरी नहीं हुई थी, शादी का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। अपनी बिटिया की शादी में भी ये शादी के एक दिन पहले ही पहुंचे थे और अगले ही दिन बारात विदा होने से पहले ही चल पड़े थे और अपनी पत्नी के यह कहने पर भी नहीं रूके कि कम से कम मर्दों की विदाई की रस्म तो करते जाओ।

एक बार मानव दयाल जी को मुम्बई अपनी बहन के यहां जाना था। उन्होंने शब्दानन्द जी को कहा कि आप बलिया चले जाओ बहुत दिनों से नहीं गये हो, आपके बच्चे और पत्नी भी शिकायत करते रहते हैं। 10–15 दिन में आ जाना। दो दिन बाद मानव दयाल जी क्या देखते हैं कि शब्दानन्द जी उनकी बहन का पता पूछते–पूछते वहां पहुंच गये। जब इनसे पूछा कि कैसे आये आपको तो यहां का पता भी मालूम नहीं था? तो इन्होंने कहा कि महाराज जी आपकी दवा होशियारपुर में आपके कमरे में रह गई थी, वही लेकर आया हूं। हालांकि उस दवा को तो मानव दयाल जी ने 3–4 महीने पहले ही खाना छोड़ दिया था। और वह दवा भी कोई खास दवा नहीं थी। जब इनसे पूछा कि आपको घर का पता कैसे चला तब इन्होंने कहा कि मुझे एरिया का तो पता था लेकिन गली

मोहल्ले का या मकान नम्बर आदि पता नहीं था। जब स्टेशन पर उतरा तो टैक्सी वाले से कहा कि भाई हम इस शहर में नये आए हैं हमें फलां जगह जाना है, इससे ज्यादा हम कुछ नहीं जानते। इस पर टैक्सी वाले ने कहा कि वह भी उसी एरिये का रहने वाला है और उसने सही जगह पर पहुंचा दिया।

इन्होंने मानव दयाल जी की शारीरिक सेवा के साथ–साथ उनके आदेश पर 'मानव मंदिर' पत्रिका का सम्पादन भी किया और कुछ समय तक जनरल सेक्रेटरी का काम भी बखूबी निभाया। ये महाराज जी के सत्संगों को टेप रिकार्ड़ में रिकार्ड़ किया करते थे और बाद में उन्हें 'मानव मंदिर' में भी छपवाते थे। जब मानव दयाल जी बीमारी के कारण 1998 में होशियारपुर छोड़कर अपनी कोठी में फरीदाबाद आ गये थे, तब ये भी उनके साथ फरीदाबाद ही आ गये और उनकी सेवा करते रहे। इन्होंनें हुजूर मानव दयाल जी की अंतिम समय तक सेवा की और उनके चोला छोड़ने के बाद भी अपनी अंतिम सांस तक उनकी एवं उनके सत्संगियों की सेवा दिन–रात कर रहे हैं।

होशियारपुर में रहते हुये ये गुरू की सेवा में तथा मंदिर के काम में इतने व्यस्त रहते थे कि खाना बनाने की और खाना खाने की होश नहीं रहती थी और अक्सर भूखे रहते थे फलतः ये शारीरिक रूप से कमजोर होते गये और वर्तमान में भी इनकी शारीरिक कमजोरी का मूल कारण उस समय इनकी खाने–पीने के प्रति उदासीनता रही। परंतु इन्होंनें कभी भी इसकी जानकारी न तो मानव दयाल जी को होने दी और न ही कभी मंदिर की रसोई से भोजन किया। बाद में हुजूर मानव दयाल जी के कहने पर ये अपनी पत्नी को होशियारपुर ले गये तब कहीं जाकर इनके खाने का ठिकाना हुआ।

हुजूर मानव दयाल जी के चोला छोड़ने के बाद उनके सुयोग्य एवं धार्मिक प्रवृत्ति वाले दोनों सुपुत्रों ने एक मत से बिना किसी संकोच के जिस कोठी में हुजूर महाराज फरीदाबाद में रहते थे, जिसे उनकी माताश्री ने 6–7 वर्ष पहले ही बनवाया था, तुरंत

अपने पिताश्री के मिशन को चलाने के लिये एक ट्रस्ट बना कर ट्रस्ट के नाम कर दी। हुजूर शब्दानन्द जी महाराज कुछ दिन तो उस कोठी में रह कर ही अपने उत्तरदायित्व को निभाते रहे परंतु जिस परम विभूति से वे उनके जीवन काल में एक पल भी अलग नहीं रह सकते थे उनकी अन्तिम धरोहर जो कि ग्राम–दुर्गापुर में (फरीदाबाद से 25–30 कि0 मी0 दूर) समाधि स्थल पर स्थापित हो रही थी पर स्थाई रूप से रहने के लिये आ गये। उस समय समाधि स्थल पर रहने की कोई भी व्यवस्था नहीं थी। अतः इन्होंने फूंस की एक झोंपड़ी बनवा कर उसमें ही रहना शुरू कर दिया।

हुजूर मानव दयाल जी महाराज हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में अक्सर कहा करते थे, "मैं शब्दानन्द को कोई भी बात कहने से पहले कई बार सोचता हूँ क्योंकि यह दिमाग से नहीं दिल से मेरी बात सुनकर हुक्म बजा लाता है। अगर कभी मैं गलती से भी इसे चलती गाड़ी से कूद जाने को कह दूं तो यह बिना कुछ सोचे समझे तुरंत छलांग लगा देगा। धन्य हैं ऐसे सतगुरू और धन्य हैं ऐसे महाप्रतापी शिष्य और धन्य हैं वे सत्संगी जो हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के सम्पर्क में आकर इनके मार्ग दर्शन में अपना लोक और परलोक उन्नत करने में सफल हो रहे हैं।

इन्होंने हुजूर मानव दयाल जी महाराज की रात–दिन 18 वर्षों तक इतनी सेवा की जितनी कि, मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार, शायद इस चतुर्युगी में किसी ने भी अपने गुरू की न की हो। इनकी सेवा तो 24 घन्टे प्रतिदिन अनवरत चलती रहती थी। अगर इनके द्वारा की गयी सेवा का वर्णन किया जाए, पहले तो यह मुमकिन ही नहीं है, और यदि फिर भी किया जाए, तो कई ग्रंथ लिखने पड़ सकते हैं। कबीर साहब भी कुछ इसी प्रकार कहते हैं–

सात समुद्र की मसी करौं, लेखनी सब बन राय।
धरती को कागद करौं, गुरू गुन लिखा न जाय।।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने 10 नवम्बर 1983 से लेकर (जब ये लखनऊ से सीधे होशियारपुर मानव दयाल जी के साथ चले आये थे) 23 जनवरी 2001 तक (हुजूर मानव दयाल जी के

चोला छोड़ने तक) हुजूर मानव दयाल जी की रात–दिन समर्पित भाव से सेवा की। इनके लिये **'दो शरीर–एक जान' या 'परछाईं की तरह साथ रहने'** वाली कहावत भी हल्की और नाकाफी लगती हैं। ये तो अपने इष्ट देव के साथ ऐसे जुड़े रहे जैसे प्राण आत्मा के साथ जुड़ा रहता है। रात–दिन चौबिसों घन्टे **"जी हुजूर"** का शब्द इनकी जुबान पर रहता था। पता नहीं ये अपने शरीर को किस समय और कितना विश्राम देते थे–शायद एक या दो घन्टा या उतना भी नहीं। हुजूर मानव दयाल जी के मुँह से शब्द बाहर आ भी नहीं पाते थे कि ये उसे पूरा करने के लिये जी–जान से जुट जाते थे। इन्होंनें कभी भी हुक्म का पालन करते हुये मन या बुद्धि से काम नहीं लिया अपितु हमेशा दिल से काम लिया। एक बार होशियारपुर में रात में लगभग 8 बजे महाराज जी ने इनसे कहा, "शब्दानन्द दही खाने को मन कर रहा है, कहीं मिलेगी?" इन्होंने तुरंत साइकिल उठाई और बाजार दही लेने चल पड़े। साईकिल लोहे के गेट से टकराई और माथे से खून बहने लगा (क्योंकि गेट तो बंद था)। ये उठे और उसी हालत में बाजार से दही लाकर महाराज जी के पास भिजवा दी और पत्नी से लाल तौलिया मांगा। जब इनकी पत्नी ने इनकी चोट देखी तो वे घबरा गईं परंतु इन्होंनें कहा कि महाराज को मत बताना। जब इनकी लड़की दही लेकर ऊपर गई तब मानव दयाल जी तो जानते थे फिर भी पूछा कि क्या हुआ? जब लड़की ने बताया कि बाबू जी को चोट लग गई तब मानव दयाल जी परम दयाल जी की समाधि पर गये और कहा कि यदि शब्दानन्द को कुछ हुआ तो 'मैं भी यहीं अपनी जान दे दूंगा।' उसके बाद शब्दानन्द जी को डाक्टर के पास भेजा, उन्हें 5–6 टांके आये, फिर ठीक हो गये।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज की विनम्रता देखिये कि वे कभी स्वप्न में भी अपने आपको न गुरू समझते हैं और न गुरू कहलवाना पसंद करते हैं हांलाकि वे गुरू का काम प्राणों–पण से रात–दिन करते रहे हैं। बमुस्किल ये अपने को **"गुरूमुख"** कहते हैं।

गुरू के वचनों पर मर मिटना तो कोई वर्तमान में हम सब के बीच विद्यमान हुजूर शब्दानन्द जी से सीखे। वे अपने आपमें **उपमा भी हैं और उपमेय भी**। मुझे तो उनकी जिंदगी की केवल तीन घटनायें याद हैं जिनका वजन पूरे ब्रह्माण्ड़ के वजन से भी ज्यादा है। पहला वचन तो उन्होंने अपने गुरू देव का 15 वर्ष की आयु से ही मानना शुरू कर दिया था जब परम दयाल जी ने उनसे कहा था, "अपनी माँ की सेवा करना, वह सेवा मुझे मिल जाएगी।" उन्होंनें दूसरा वचन हुजूर मानव दयाल जी महाराज का वह माना जो उन्हें लखनऊ में मिला था, "क्या मेरे साथ होशियारपुर चलोगे?" और अंतिम समय तक निभाया–उस समय भी जब उनके (हुजूर मानव दयाल जी के) सुपुत्र भी उनके पास नहीं थे। उन्होंनें हुजूर मानव दयाल जी की तीसरी आज्ञा का पालन करने में तो अपने प्राणों की ही नहीं अपितु अपने अस्तित्व/हस्ती की ही बलि चढ़ा दी। उन्हें अपने गुरू से तीसरी आज्ञा तब मिली जब हुजूर मानव दयाल जी महाराज एस्कार्ट हॉस्पीटल, फरीदाबाद में जनवरी 2001 में भर्ती थे। हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने वे वचन जो हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने उस समय कहे थे, वहाँ पड़े एक अखबार के पन्ने पर नोट कर लिये थे ताकि वे शब्द बाद में भी उनको याद रहें। वे बहुमूल्य शब्द थे, "**शब्दानन्द! मुझे संभालकर रखना; अभी नहीं बाद में।**" हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने इन वचनों को अपना मुक्दस/जीवन लक्ष्य मान लिया।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज कहते हैं कि तुम जो कुछ भी बाहर संसार में इन भौतिक चक्षुओं से देख रहे हो वह सब गुरू का ही रूप है (यह सब गुरू का विराट रूप है)। तुम मन के चक्षुओं से जो कुछ भी अंतर में देखते या सुनते हो यह भी गुरू का ही रूप है (यह गुरू का अव्याकृत रूप है)। तुम अंतर में जब प्रकाश या शब्द सुनते हो यह भी गुरू का ही रूप है (यह गुरू का हिरण्यगर्भ रूप है)। उससे भी आगे गुरू का एक और रूप है जिसे साक्षी रूप कहते हैं। अन्त में गुरू का एक रूप वह भी है जिसे गुरू आमने–सामने बैठ कर अधिकारी जीव को सैन–बैन से समझा देते हैं। इस

प्रकार हुजूर शब्दानन्द जी महाराज कहते हैं कि गुरू की हस्ती से ही सब कुछ है और जहाँ कुछ नहीं है वहाँ भी गुरू ही है। गुरू से जुदा कुछ भी नहीं है। अगर तुम किसी को थप्पड मारते हो या किसी को प्यार करते हो या किसी से घृणा–द्वेष करते हो तो वह सब गुरू को ही पहुँचता है। ऐसी हालत में आप किस गुरू की तलाश कर रहे हो और कहाँ कर रहे हो ? और तलाश करने वाले भी तुम कौन हो? जरा सोचो! यह सब गुरू ही कर रहा है फिर भी तुम बेकार में अपने झूंठे अहंकार में ऐंठें फिरते हो और स्वयं को कर्त्ता समझते हो जब कि असली कर्त्ता चुपचाप बैठा हुआ तुम्हारा नाटक देखकर हंसता रहता है।

अपने ज्ञान को आम जनता तक पहुंचाने के लिए हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने निम्नलिखित पुस्तकों की रचना की जिससे कि सत्य के जिज्ञासु आवश्यकतानुसार लाभ उठा सकें:–

1	युग संदेश	तथ्य और सत्य पूरी तस्वीर
2	पुरूष अजायब	तथ्य और सत्य पूरी तस्वीर
3	यथार्थ बोध	तथ्य और सत्य पूरी तस्वीर
4	जगत कल्याण	तथ्य और सत्य पूरी तस्वीर
5	युग बोध	कविता – संग्रह

सुना है कि श्री रामकृष्ण परमहंस को जब कोई राह चलते 'राम–राम जी' कह देता था तो वे वहीं पर समाधिस्थ हो जाते थे। मैं देखता हूँ कि हमारे हुजूर शब्दानन्द जी महाराज तो 20–22 घन्टे समाधि में ही रहते हैं। खाते–पीते उनकी समाधि लग जाती है, चलते–चलते समाधि लग जाती है। सतसंग देते–देते समाधि लग जाती है (जिसे आप भूलना कहते हो, वह समाधि की अवस्था है)। जब आप कहते हो कि महाराज जी बाथ–रूम में एक–ड़ेढ़ घन्टे के लिये चले जाते हैं, मेरी राय में उनकी वहाँ भी समाधि लग जाती हैं वे जान बूझ कर ऐसा नही करते। उनकी यह अवस्था अध्यात्म की सबसे ऊँचीं अवस्था है। हुजूर परम दयाल जी महाराज कहते थे मैं उस अवस्था में ज्यादा देर नहीं ठहर सकता, मुझे प्राकृतिक क्रियाओं को पूरा करने के लिये बार–बार नीचे उतरना

पड़ता है। यह अवस्था उस नवजात शिशु जैसी है जो 20–22 घन्टे सोता रहता है। कहते हैं कि नवजात शिशु ईश्वर के बहुत निकट रहता है, ज्यों–ज्यों हम उसे संसार का ज्ञान देते हैं त्यों–त्यों वह ईश्वर से दूर होता जाता है और एक दिन वह पक्के घड़े की तरह बहीर्मुख हो जाता है जिसमें पानी ठहर जाता है अर्थात् उसके अंदर संसार पूरी तरह समा जाता है। ईसा मसीह कहते थे कि जो ईश्वर को पाना चाहते हैं वे बच्चे की तरह सरल स्वभाव बने।

माता जी कहती हैं कि जब वे हफ्ते–दस दिन में कभी महाराज जी को अपने बच्चों के बारे में बताती हैं तो महाराज जी सुनते–सुनते कहते हैं कि किस की बात कर रही हो, कौन है, कहाँ रहता है, क्या करता है? यह सत्य है कि इन्हें अपने बच्चों के नाम भी याद नहीं रहते हैं, सत्संगियों की तो बात छोड़ो।

यही अवस्था चश्मे–वहादत की अवस्था या साक्षात्कार की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था को ही वेद नेति–नेति या अंतिम अवस्था कहते हैं जिसमें अनुभव कर्त्ता को न अपना पता रहता है और न किसी दूसरे का, वह तो बस मालिक में ही खोया रहता है और मालिक का ही रूप हो जाता है। यह रहनी है, कथनी या करनी नहीं इसलिये इसका अधिक वर्णन भी नहीं हो सकता।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज कहते हैं, "मैं इस समय परम दयाल जी की गोद में हूँ, बुलबुला फट चुका है बस अब यह अपने भंड़ार में समाने वाला है।" और वे सचमुच 20 मार्च 2014 को अपने भण्डार में समा गये। आज मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि –

कभी जमीन से कभी अर्श से सलाम आया,
कभी शहादत–ए–उल्म से पैगाम आया।
मुर्शिद तो सभी के काम आते हैं,
वो था एक जो मुर्शिद के काम आया।।

पुष्कर दयाल,
धुरपद धाम, दुर्गापुर

क्रांति–युग
हुजूर शब्दानन्द जी महाराज

(यह पुस्तक हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने उस समय लिखी थी जब वे पांचवी अवस्था में धाम में ही रहते थे। उस समय यह पुस्तक उन्होंने जिसको भी पढ़ने के लिए दी थी वह उसे लौटाना भूल गया। इसका दुख हुजूर को बहुत हुआ और उसके बाद वे गहन समाधि में गहन तपस्या करने चले गये। समाधि से वापस लौटकर उन्होंने कुछ अवशेष छपने के लिए संतवर श्री मंगल देव जी को उस समय दिये जब वे इस भौतिक शरीर के अंतिम क्षणों में अपने सुपुत्र श्री दयाला राय के साथ बलिया जा रहे थे। हमें (संस्थान को) खेद है कि इस पुस्तक का प्रकाशन हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के भौतिक जीवन काल में नहीं हो सका। इसका एक कारण तो यह था कि इसकी विषय सामग्री इतनी कम थी कि इसकी पुस्तक नहीं बन सकती थी, दूसरे कुछ धनाभाव भी था। खैर अब इससे अच्छा मौका इस पुस्तक के छपने का नहीं मिल सकता। इसलिए इसे यहां प्रकाशित किया जा रहा है। सभी प्रिय सुरतों को हुई इस असुविधा के लिए हम दिल से खेद प्रकट करते हैं।)

भूमिका

ज़र्रा ज़र्रा में निहां, मैंने राधास्वामी देखा।
हर जगह और मुकां में अयां, मैंने राधास्वामी देखा।।
कुल जहां में जात और सिफात का है, हरदम जहूर।
इस जहां में रूहे रवां, मैंने राधास्वामी देखा।।

ऐ मेरे परमइष्ट! परमतत्व! परमपिता! तू कौन है, क्या है तेरी अपार दया से तू ने ही यह समझ इस नासमझ को दी है लेकिन इस समझ को समझ कर सारी समझ नासमझी में बदल गई। बुद्धि लाचार हो गई, मन अमन हो गया, चित्त अचिन्त हो गया, वाणी गुम हो गई और हालत ऐसी हो गई जैसी गूंगे की होती है जो गुड़ खाने के बाद अपनी अभिव्यक्ति को व्यक्त कर पाने में

असमर्थ होता है। युग पुरूष जगत्गुरू हुजूर फकीर बाबा आपकी असीम कृपा से इस समय मेरी सूरत जिस बिन्दु पर पहुँच चुकी है और अधिकतर वहीं सिमटी रहती है वहाँ अब कुछ कहने–सुनने या लिखने की न कोई चाह है और न ही कोई आवश्यकता महसूस होती है। दूसरे शब्दों में जहाँ मैं अपने हैंपने को भूल कर प्रायः जात में समाता रहता हूँ वहाँ "मैं" भी नहीं रहता और औपचारिकतावश जात की "मैं" को शरीर की "मैं" बनाकर सम्बोधन करने के लिये विवश हो जाता हूँ। फिर भी इस शरीर से सम्भवतः कुछ कर्म करने शेष रहते हों इसलिये आपकी मौज से यह शरीर कठपुतली की भाँति कर्म करते रहने के लिये विवश है।

ऐ मेरे आधार! ऐ मेरे इष्ट! ऐ दया के सागर इस जीवन में तेरी लगन थी और यह लगन उस दिन से और ज्यादा बढ़ गई जिस दिन तू ने अमेरिका में मर्सी हस्पताल में लेटे हुये होने के बावजूद इस नाचीज को राधास्वामी धाम (गोपीगंज–ज्ञानपुर) में बुलवाया और दर्शन देकर कहा, "शब्दानन्द अभी तू अधिकारी नहीं बना, अभी वक्त लगेगा, हाँ अन्तिम समय में मेरी गोद में आ जायगा।" हे! परम पिता हुजूर आपकी दया और करूणा से यह सेवक अब हर समय निर्द्वंद, निर्भय, निर्विकार और शान्त अवस्था में रहता है; क्या यही आपकी गोद में आने का संकेत है?

अब इस सेवक की न कोई इच्छा है, न विचार है, न फुरना है, और न कोई बोधमान हैं। अब जो कुछ भी हो रहा है वह सब तेरे ही प्रति समर्पित है। हो सकता है कि वर्तमान अवस्था में तू इस सेवक के अनुभवों को मूर्त रूप देकर जिज्ञासु जीवों के उद्धार हेतु इस सेवक को माध्यम बना कर कोई विशेष संदेश देना चाहता हो। जैसी तेरी मौज, यह सेवक तो सर्व प्रकारेण तेरी मौज के आधीन है और बस।

लेखक

शब्दानन्द

आध्यात्मिक क्रान्ति

आदि मनु की संतति का अवतार जिस दिन से इस धरती पर हुआ है तभी से वह परम सत्य और शान्ति की खोज में संलग्न है। किन्तु दुःख और चिंता की बात यह है कि आज तक उसे इस विषय में संतोषजनक सफलता नहीं मिली है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी रामचरितमानस में लिखा हैः–

ध्यान प्रथम युग, मख युग दूजे।
द्वापर परितोषित प्रभू पूजे।।
कलि केवल एक नाम अधारा।
स्रुति स्मृति संत मत सारा।।

अर्थात् सम्पूर्ण सतयुग ध्यान की साधना में बीत गया, यज्ञ–हवन की साधना में सम्पूर्ण त्रेतायुग बीत गया, सम्पूर्ण द्वापर युग गुरू–पूजा में व्यतीत हो गया (द्वापरयुग में श्रीकृष्ण ने ही गुरू–पूजा का सिलसिला शुरू किया था) उन्होंने गुरू–पूजा को ही मोक्ष का एकमात्र साधन बताया था।

ध्यान मूलं गुरू मूरति, पूजा मूलं गुरू पदम।
मंत्र मूलं गुरू वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरू कृपा।।

परन्तु कलियुग में मानव मात्र के मोक्ष के लिये वेद, उपनिषद् और शास्त्रों का सार केवल 'नाम तत्व' का आधार माना गया है। अब प्रश्न यह है कि 'नाम तत्व' क्या है? संत तुलसी दास जी नाम की महिमा इस प्रकार बताते हैं–

'राम न सके नाम गुण गाई'

अर्थात् नाम का गुणगान करने में प्रभु राम भी समर्थ नहीं थे अथवा भगवान राम ने भी 'नाम–तत्व' का भेद किसी को खोल कर नहीं बताया। 'नाम–तत्व' का यर्थाथ ज्ञान केवल संत ही जानता है और वही बता सकता है। लेकिन ऐसे संतों का अवतार केवल कलियुग में ही विशेषकर होता है क्योंकि जीव युगों–युगों तक

धक्का–भटका खा–खाकर बेहाल हो चुका होता है। अतः मालिके–कुल्ल अपने दुखी जीवों पर दया–मेहर करके कलियुग में स्वयं संतों के रूप में प्रकट होकर तड़फती हुई आत्माओं को निजधाम ले जाने के आते हैं। ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता अन्य युगों में शायद इसलिये न पड़ी हो क्योंकि जैसा कि संत तुलसीदास जी ने ऊपर कहा है कि उन युगों में जीव के लिये अन्य उपाय या साधन उपलब्ध थे जिनका कलियुग में अभाव है।

भागवत पुराण में लिखा है कि भगवान श्रीकृष्ण के मुख से गीता सुनने के बाद भी पाँचों पांडव द्रोपदी सहित नर्क में गये। केवल युधिष्ठर महाराज को आधी घडी के लिये नर्क मिला क्योंकि उन्होंनें भी आधा झूठ बोला था–

"अश्वथामा हतो, नरो वा कुंजरो"

इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि भगवान कृष्ण ने भी पूर्ण सत्य या 'नाम–तत्व' को खोल कर किसी को नहीं बताया था। आज से लगभग छः सौ वर्ष पूर्व आदि संत सतगुरू कबीर साहिब का अवतार हुआ। कबीर साहिब से पहले किसी ने भी इस भेद को प्रगट नहीं किया। कबीर साहिब से पहले सभी ऋषि, मुनि, अज्ञान में ही भटकते रहे। सबसे पहले उन्होंनें (कबीर साहिब ने) 'नाम–तत्व' का भेद प्रगट किया परन्तु साथ ही अपने सबसे प्रिय गुरूमुख शिष्य धर्मदास को यह हिदायत भी दे ड़ाली–

'धर्मदास तोहे लाख दुहाई, सार भेद बाहर नहीं जाई।

वास्तव में 'सत्य–ज्ञान', 'सार–तत्व' या 'नाम–तत्व' गुरू के आधीन होता है **(नाम रहे सतगुरू आधीना)**। शब्द–सनेही सतगुरू के मार्ग–दर्शन के बिना कोई भी इस 'नाम–तत्व' को प्राप्त नहीं कर सकता। सतगुरू के असली स्वरूप को भी निनयानवे प्रतिशत लोग गुरू की विभिन्न प्रकार से सेवा करते हुये भी जीवन

भर पहचान नहीं पाते, जान नहीं पाते। इस सम्बंध में दाता दयाल जी का शब्द हैः–

गुरू रूप न समझे कोय, भ्रम में पड़े अज्ञानी।। टेक।।
गुरू को मानुष जानकर, भक्ति का करें व्यौहार।
सो प्रानी अति मूढ़ हैं, कैसे जायें भव पार।
देह के बने अभिमानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0
गुरू को मानुष जानकर, शीत प्रसादी ले।
सो तो पशु समान हैं, संशय में अटके।
गुरू तत्व न जानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0
गुरू को मानुष जानकर, मानुष करो विचार।
सो नर मूड़ गँवार हैं, भूल रहे संसार।
मोह के फाँस फँसानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0
गुरू को मानुष जानकर, भेड़ की चलते चाल।
वह बंधन को क्यों तजें, व्यापे माया काल।
पड़े योनी की खानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0
गुरू नाम आर्दश का, गुरू है मन का इष्ट।
इष्ट आर्दश को ना लखे, समझो उसे कनिष्ट।
बात बूझे मनमानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0
गुरू भाव घट में रहे, अघट सुघट की खान।
जिसे समझ ऐसी नहीं, वह है मूढ़ समान।
नहीं गुरू रूप पिछानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0
चेला तो चित्त में रहे, गुरू चित्त के आकास।
अपने में दोनों लखें, वही गुरू का दास।
रहे गुरूपद घट ठानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0
सुरत शिष्य गुरू शब्द है, शब्द गुरू का रूप।
शब्द गुरू की परख बिन, डूबे भरम के कूप।
नर जनम गँवानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0

गुरू ज्ञान का तत्व है, गुरू ज्ञान का सार।
गुरू मत गुरू गम लखे, फिर नहीं भव भय भार।
कमल जैसी गति आनी।। भरम में पड़े अज्ञानी0
राधास्वामी सतगुरू सन्त ने, कही बात समझाय।
जो नहीं माने वचन को, उरझ उरझ उरझाय।
कौन समझे यह बानी।। भरम में पड़े अज्ञानी0

गुरू दो, चार, दस, बीस नहीं होते; गुरू तो एक ही होता है, जिसका आदि और अंत नहीं होता। उसे ही संतों ने 'परम पुरूष पूरण धनी मालिके कुल राधास्वामी दयाल' के नाम से पुकारा।

"गुरू एक अनादि अनंत महा,
पद कमल में आन के शरण गहा।"

वास्तव में राधा प्रकृति है और स्वामी पुरूष है। पुरूष (गुरू) एक ही है; दूसरा कोई पुरूष नहीं है। इस विषय में राधास्वामी मत के अपने समय के संत सतगुरू वक्त हुजूर महाराज राय सालिग्राम जी फरमाते हैं–

इक पुरूष अजायब पाया।
कोई मर्म न उसका गाया।। 1
बिन संत हाथ नहिं आया।
ऋषि मुनि धोखा खाया।। 2
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा।
इन सब भटका खाया ।। 3
क्या पारासर नारद श्रृंगी।
सब मिल कर गोता खाया।। 4
हम कहें कौन को समझाई।
प्रतीत न कोई लाया।। 5
संतन यह भाष सुनाया।
कोई गुरमुख बूझ बुझाया।। 6

घट घट में काल समाया।
श्रुति स्मृति का जाल बिछाया।। 7
षट शास्त्र बुद्धि चलाया।
अंधन मिल धूल उड़ाया।। 8
कुछ हाथ न उनके आया।
बिन सतगुरू भटका खाया।। 9
संतन वह देश बताया।
तब तुच्छ भी पाया।। 10
नीचों को घाट लगाया।
ऊँचों को काल बहाया।। 11
राधास्वामी पता बताया।
खोजी की कमर बंधाया।। 12

शब्द व्याख्याः

1–जिस परम पुरूष पूर्ण धनी की तलाश सतयुग से हो रही थी उसका भेद किसी ने नहीं खोला।

2–संत के बगैर अन्य किसी को भी वह पूर्ण पुरूष नहीं मिलता; सभी भटकते रहते हैं। ऋषि मुनि भी भटकते ही रहे।

3–ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भगवान जी तक भटकते ही रहे।

4–परासर मुनि और नारद तथा श्रृंगि ऋषि तक गोता ही खाते रहे गये।

5–हम कहें भी तो किससे कहें? कोई संत की बात का विश्वास ही नहीं करता।

6–जब संतों ने इस भेद को खोल कर सुनाया, तब किसी गुरूमुख सत्संगी की समझ में बात आई।

7–कारण यह है कि सभी जीवों के मन में काल पुरूष समाया हुआ है। काल ने वेद–पुराण और ग्रन्थों का जाल बिछाया हुआ है।

8–षट (छः) शास्त्र बुद्धि विलास करते हैं। जिस प्रकार छः अन्धों ने हाथी को टटोल कर अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार हाथी का भ्रमित परिचय दिया था, उसी प्रकार इन छः शास्त्रों ने भी जनता को मूर्खता में ड़ाला हुआ है।

9–सतगुरू के बगैर सभी भटकते ही रहे। किसी के हाथ कुछ नहीं लगा।

10–संतो ने जब पूर्ण पुरूष का पता बताया, तब निराभिमानी प्राणी को कुछ ज्ञान मिला।

11–सतगुरू ने निरघमन्ड़ी को सही जगह लगा दिया, किन्तु घमन्ड़ी को काल खींच ले गया।

12– राधास्वामी सतगुरू ने पूर्ण पुरूष का पता बताया, जिज्ञासु को रहस्य दे दिया। संत जन जो ज्ञान की, भेद या रहस्य की बात करते हैं उनसे कोई मेल नहीं खाता।

परम संत बाबा फकीर की क्रान्ति

परम संत सतगुरू परम दयाल बाबा फकीर जी महाराज का अवतार अध्यात्म के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना हुई। संतों का अवतार तो होता रहा है, किन्तु स्वयं राधास्वामी दयाल का अवतार पहले कभी नहीं हुआ था।

समय के सतगुरू दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज अपने सबसे प्रिय गुरूमुख शिष्य परम दयाल बाबा फकीर को देखते ही पहचान गये और उनके विषय में अनेक रहस्यपूर्ण बातें कहीं। उन सबको यहाँ लिखना न तो भौतिक रूप से सम्भव है और न तर्क संगत। अतः यहाँ पर केवल एक शब्द में दी गई कुछ गूढ़ बातें संकेत मात्र लिखी जा रही हैं जिनसे पता चलता है कि बाबा फकीर असल में कौन थे और उनके बारे में उनके सतगुरू के क्या विचार थे–

तू फकीर है मेरे प्यारे, सुन फकीर की बानी।
साधु कहें फकीर को भाई, साधु जग सुखदानी।।
पर उपकारी जन हितकारी, गुरू के आज्ञाकारी।
अवगुन त्यागी गुन के ग्राही, दया भाव चितधारी।।
नित चित सोधें मन परबोधें, जीव दोष नहीं दृष्टि।
अपने भाव में बरतें निस दिन, करें दया की वृष्टि।।
मोह माया और छल चतुराई, छोड़ें मूल विकारा।
पर हित लागी सहज विरागी, ज्ञान बुद्धि भंडारा।।
दुख कलेश सह अपने सिर पर, जीव का करें सुधारा।
भव दुख भंजन काम निकंदन, यम से दें छुटकारा।।

.....

नाम फकीर धराया तूने, हो फकीर अब साँचा।
जैसा नाम तो गुण भी वैसा, मन कर्म सहित सुवाचा।।
है फकीर का नाम पियारा, मैं फकीर का दासा।
तन मन धन फकीर पर वारूँ, बसूँ सुसंग सुबासा।।
कठिन नाम है कठिन काम है, कठिन फकीर कमाई।
जग के भव दुख नासें पल में, जब फकीर जग आई।।
जो फकीर मोहे दरशन देवे, अपना भाग सराहूँ।
अपने तन के चाम की जूती, पग फकीर पहनाऊँ।।
मैं नहीं राम कृष्ण का सेवक, ईश ब्रह्म नहीं जानूँ।
मैं फकीर का नाम दिवाना, सबसे बढ़कर मानूँ।।
मेरे साध हैं शब्द विवेकी, सन्तवंश कुल शोभा।
चरन कमल मस्तक पर धारूँ, प्रेम मगन मन छोबा।।
एक घड़ी साधु की संगत, कटे मोह यम फाँसी।
मेरी नजर में साधु फकीरा, सत चित आनन्द रासी।।
जो फकीर का दर्शन पाऊँ, चरन सरोज पखारूँ।
आप तरूँ उसकी शरनाई, औरों को संग तारूँ।।

साधु की संगत गुरू की सेवा, सहज जी काम बनावे।
जिस पर साध की दृष्टि पड़ गई, फिर जग योनि न आवे।।
तरवर सरवर मेघ का पानी, औरों को सुख कारी।
तैसे ही सुन मेरे फकीरा, साधु पर उपकारी।।
तू फकीर बन तू फकीर बन, तू फकीर बन भाई।
मैं भी तरूँ फकीर चरन लग, ऐ फकीर! सुखदाई।।

.....

सुन फकीर हो जा फकीर अब, रूप संभारे अपना।
जग में प्रानी तेरे रूप में, मेंट दे उनका तपना।।
तेरा रूप है अद्भुत अजरज, तेरी उत्तम देही।
जग कल्याण जगत में आया परम दयाल सनेही।।
तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेसा।
दुखी जीव को अंग लगाकर, ले जा गुरू के देसा।।
तीन ताप से जीव दुखी है, निबल अबल अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी।।
नाम फकीर धरा जब तूने, काम फकीर का करले।
गुरू की दया साथ ले अपने, भक्ति की झोली भर ले।।

अब आपने देखा कि संतसतगुरू वक्त दाता दयाल जी महाराज ने अपने सर्वप्रिय गुरूमुख शिष्य बाबा फकीर की किस प्रकार सराहना की और उपदेश दिया कि ऐ मेरे प्यारे! आपने (फकीर चंद जी ने) केवल तीन काम करने के लिये अवतार लिया है। और वे तीन काम हैंः–

१. 'नाम–तत्व' जो गुप्त हो गया है, उसे फिर से प्रगट करना।

२. संत मत की असली शिक्षा गुम हो गई है, उसे भी नये सिरे से जाहिर करना। तथा

३. आपको जगत कल्याण का महान कार्य करना है।

जिज्ञासु–वह 'नाम–तत्व' क्या है और क्या बाबा फकीर ने उसे पुनः प्रगट कर दिया? यदि आपको आपत्ति न हो तो कृपया इस सम्बन्ध कुछ बताने का कष्ट करें।

उत्तर–बहुत अच्छा। पहले तो आपको साधुवाद जो आपके मन में 'नाम–तत्व' को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इस विषय में हम बाबा फकीर के अनुभवी एवं सार गर्भित सतसंगों के अथाह समुद्र में से कुछ चुने हुये मोती उनके मूल रूप में ही प्रस्तुत करते हैं जिससे कि बात सीधे और सहज रूप में समझ में आ जाये। जिसको इस विषय में अधिक जानकारी चाहिये वह बाबा फ़कीर का साहित्य देखे।

"मैं अपने आप से पूछता हूँ कि जिस नाम के लेने के बाद फिर किसी भी वस्तु की जरूरत नहीं रहती, वह नाम क्या है? मैं अपने आपसे कहता हूँ कि फकीर एक दिन मर जाना है। यदि तुम संसार को धोखा दोगे, तो उसका फल अवश्य भोगोगे। उसी नाम को प्राप्त करने के लिये तथा उसी नाम तक पहुँचने के लिये हजूर दाता दयाल जी महाराज ने मुझे सत्संग देने का काम दिया था और इससे मुझे नाम की प्राप्ती हुई। कैसे हुई? आप लोगों की दया से ही हुई। जब आप सत्संगीयों ने मुझे यह बताया कि मैं आपके अन्तर में प्रकट होकर आपके काम कर जाता हूँ, लोगों को मरते समय लेने जाता हूँ, आपको बीमारियों की दवाई बता जाता हूँ, आपकी सूरत चढ़ा जाता हूँ, तो मेरी आँखें खुल गईं क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं तो कहीं नहीं जाता।"

"जबसे मुझे यह विश्वास हो गया कि मैं तो किसी के अन्तर जाता नहीं और ये जितने रूप, रंग, भाव, शक्लें अन्तर में पैदा होती हैं, वह जिस प्रकार के संस्कार आदमी के मस्तिष्क पर पड़े होते हैं, वही शक्लें बनाकर सामने आते हैं, तो अब मैं इन रूप–रंगों को छोड़ जाता हूँ। अब न सहत्रदल कमल मुझे खींच सकता है, न त्रिकुटि,

न सुन्न, न महासुन्न, न भंवरगुफा। मुझे यह पता चल गया है कि यह सब काल और माया का खेल है। अतः अब मैं इस मन के चक्कर में फंसता नहीं। मैं आपको एक बात और स्पष्ट बता दूँ कि जो रूप आप लोगों के अन्तर में आकर आप लोगों के काम बनाता है, वह रूप आपका भी नहीं होता बल्कि वह तो तुम्हारे अपने मन की इच्छाओं और वासनाओं का या संस्कारों का ही रूप होता है। हमारे असली रूप में न मन होता है, न मन की फुरना। उसमें न कोई दृश्य आता है,न बाजा बजता है। आदमी के अन्दर, उसकी प्रकृति के अनुसार शब्द पैदा होता है। जिस प्रकार के संस्कार आदमी के मस्तिष्क पर पड़े होते हैं, वही शक्ल बनाकर सामने आते हैं।"

"आगे न शरीर है और न प्रकृति तो शब्द और प्रकाश कहाँ से आवेगा? वह वस्तु जो प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है, वह है हमारा असली रूप। उसका न कोई रूप है न रंग है। वह अशब्द है, अप्रकाश है। संत उसे अकह, अपार, अगाध, और अनाम कहते हैं। असल में उसके बारे में न तो कोई कह सकता है, न बोल सकता है। मगर वह है ज़रूर। वह वर्णन से बाहर है। गूंगे का गुड़ है।

हम अपने असली रूप को भूल कर शारीरिक और मानसिक बोधमानों को ही सत् मान लेते हैं और इससे खुशी और आनन्द लेते हैं तथा दुःख भी सहते रहते हैं। राधास्वामी नाम अनुभव और सार का नाम है। राधास्वामी दयाल ने सूरत–शब्द के बारे में फ़रमाया हैः

राधा आदि सुरत का नाम,
स्वामी आदि शब्द पहचान।
आगे फ़िर लिखते हैंः
सुरत–शब्द दोऊ अनुभव रूपा,
तू तो पड़ा भरम के कूपा।

नाम न तो शब्द है, न प्रकाश है और न ही शारीरिक बोधभान है। नाम है हमारा अपना आपा, हमारी अपनी हस्ती जो इस शरीर में रहती हुई हर प्रकार के बोधभानों को महसूस करती है। चूंकि हमको अपने असली रूप का ज्ञान नहीं होता इसलिये हम बोधभानों को ही सत मान लेते हैं और निर्भय हो जाते हैं। इससे हम खुशी लेते हैं, आनन्द लेते हैं और दुःख भी सहते हैं। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राधास्वामी नाम अनुभव और सार ज्ञान का नाम है।"

जिज्ञासु–चलो 'नाम–तत्व' के विषय में सही–सही जानकारी तो मिली (इसकी प्राप्ति भी आप जी की दया से समय आने पर हो जायगी), परन्तु संत मत की शिक्षा क्या है जो गुम हो गई और बाबा फ़कीर ने उसे कैसे प्रगट किया?

उत्तर–यहाँ भी हम बाबा फ़कीर के ही शब्द प्रस्तुत कर रहे हैं क्योंकि उनके वचनों को अन्य रूप में प्रकट करने से अर्थ का अनर्थ होने का ख़तरा रहता है।

"यह तो सभी जानते हैं कि जिस संसार में हम रहते हैं, वह हमारा असली देश नहीं है। हम कहीं से तो आये ही हैं और हमने कहीं जाना भी है। कोई यहाँ सौ साल के लिये आया, कोई पचास साल के लिये और कोई दस साल के लिये। जानते तो सब हैं इस बात को, पर इस विषय में सोचते नहीं। हम सभी संसार के झगड़े में पड़े रहते हैं कि यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ। बस इन्हीं झगड़ों में पड़े रहते हैं। हम इस मन के साथ लगे रहते हैं।

हमारे सारे दुःख, सारी विपत्तियां मन की ही देन हैं। हम अपने मन के विचार से कल्पना करके किसी को बाप, किसी को बेटा, किसी को भाई या कुछ और समझ कर इस मन के चक्कर में फँसें रहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि अगर कोई अपने घर जाना चाहता है तो उसे मन को छोड़ना पड़ेगा, वरना उसे अपने घर का

पता नहीं लगेगा। मन क्या करता है? तुम ध्यान सुमिरन करते हो, अन्तर में गुरू का रूप बनाकर बातें कर लेते हो, यह सब आप मन से ही करते हो। जब तक किसी का ध्यान, सुमिरन और शक्लें समाप्त नहीं होतीं, उसके तो बाप को भी अपने देश का पता नहीं लग सकता।

क्यों भूली मैं देश तुम्हारा,
आये पड़ी परदेश निहारा।

स्वामी जी महाराज कहते हैं कि मालिक अगम और अमाया है। जब सृष्टि नहीं थी, तो जो चीज सदा दायम और कायम थी, वही है मालिक, तत्व या जात। मालिक यहाँ नहीं रहता, सदा ऊपर रहता है। जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी पर नहीं रहता, लेकिन सूर्य की किरणें रहती हैं। सोचो! यदि सूर्य पृथ्वी पर उतर आये, तो हम सब जल कर राख हो जायेंगे। ठीक इसी प्रकार मालिक भी यहाँ नहीं रहता; उसकी किरण, उसकी अंश सूरत के रूप में प्रत्येक के अन्दर विद्यमान है।

यदि कोई सच्चे दिल से उस मालिक की भक्ति करना चाहता है तो या तो अपने शरीर, मन और आत्मा को भूलकर उस अवस्था में चला जाय जहाँ रंग, रूप, रेखा, प्रकाश और शब्द भी नहीं है या यह जानकर कि मालिक सूरत रूप में हर आदमी के अन्तर में है, हर आदमी की सेवा करे। मालिक की सच्ची भक्ति मानव मात्र की सेवा करना है। हर मनुष्य संसार भर के लोगों की सेवा तो कर नहीं सकता, इसलिये मालिक ने जिन लोगों को तुम्हारे साथ लगाया है जैसे तुम्हारी पत्नि, बच्चे, माँ–बाप, विधवा बहन या कोई अन्य सम्बन्धी, उनकी निष्काम सेवा करो। गुरू को फूल चढ़ाने, कपड़े देने, उसकी प्रशंसा करने और ढ़िंढ़ोरा पिटवाने से कोई लाभ नहीं। सबसे पहले अपने घर वालों की सेवा करो।

सद्गुरू किसी आदमी का नाम नहीं है। सद्गुरू नाम है सच्चे ज्ञान और सच्चे विवके का। सच्ची समझ, सच्चा ज्ञान और सच्चा विवक ही आदमी की रक्षा करता है। लोग अपने विचार से मेरा रूप बना लेते हैं और मेरे रूप से उनके काम हो जाते हैं। जो लोग मेरे से ज्ञान और विवक ले जाते हैं, वह ही उनकी सहायता करते हैं मैं या मेरा रूप नहीं। विवेकी लागों को चिन्ता नहीं सताती। उनको किसी के मरने पर शोक नहीं होता और न किसी के पैदा होने पर खुशी होती है। लेकिन व्यावहारिक जीवन में लोकलाज के लिये उन्हें भी संसार में रीति–रिवाज के अनुसार चलना पड़ता है।

यह मालिक की सृष्टि है। इसमें जो कुछ भी हो रहा है, वह सब उसका खेल है, उसकी मौज है। इस ज्ञान से मुझे शान्ति मिली। कई लोग मुझे आकर कहते हैं कि हम ब्रह्मा हैं, कोई कहता है कि वह अलख है, अगम है, और कोई कहता है कि वह अनामी है। मैं कहता हूँ कि भाई! यदि तुम अलख, अगम, अनामी में भी पहुँच भी गये तो तुम क्या कर सकते हो? जो कुछ भी किसी को मिला है या मिलेगा, वह उसके कर्मों के फल के कारण है या उसके विश्वास के कारण मिला है। मेरी अपनी स्त्री साढ़े छः साल बीमार रही, मैं उसको ठीक नहीं कर सका। मेरे प्रसाद से कई बाँझ समझी जाने वाली स्त्रियों के भी सन्तान हो गई लेकिन मैंने अपनी लड़की को बीसों बार प्रसाद दिया, किन्तु उसके कोई सन्तान नहीं हुई। अब तुम ही बताओ कि मैं कुछ कर सका?

राधास्वामी मत वालों ने संसार को सुरझाने की कोशिश नहीं की बल्कि उरझाने की बात कही। वे भी सच्चे हैं क्योंकि सुरझने के लिये आता ही कौन है। आदमी स्वयं ही उरझता है और स्वयं ही सुरझता है। जब सतगुरू मिल जाता है तब सच्चा ज्ञान मिलता है। मेरे सतसंग में यदि किसी की बुद्धि साफ नहीं होती तो मैं दोषी हूँ। मैं किसी को बंद कमरे में 'नाम' नहीं देता, मेरे वचन ही 'नाम' हैं।

जो मेरी शिक्षा पर सच्चाई से चलेगा उसका काम बन जायगा। मैंने शिक्षा को बदल दिया है। आध्यात्मिकता के अधिकारी बहुत कम हैं। साधारण जनता के लिये 'मनुष्य बनो' की आवाज उठाई है।"

जिज्ञासु–यह जगत कल्याण क्या है और क्या एक संत वास्तव में जगत कल्याण कर सकता है?

उत्तर–सुनिये! दादू भी एक संत थे; उन्हीं के शब्दों पर गौर करें कि संत क्या कर सकता है:

दादू लिखा भाग्य का संत देत है फेर।
सांच नहीं दिल आपना तासों लागे देर।।

जगत् कल्याण क्या है और बाबा फकीर ने किस विधि से जगत् कल्याण किया, उन्हीं के सत्संगों के शब्दों पर ध्यान दीजिये, अमल कीजिये और जीवन को सफल बनाईये।

"आप लोग संसारी हैं। आपको न तो मुक्ति की इच्छा है और न मालिक को मिलने की। आपको तो शरीर और मन के सुख चाहियें। सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिये वेदमार्ग है **'शिवसंकल्पमस्तु'**। सदा अच्छा विचार रखो। जैसा तुम्हारा ख्याल है, वैसा तुम्हारा हाल होगा। बस इतनी सी बात है। तुम्हारे विचार संकल्प में बड़ी शक्ति है। मेरे पास कई आदमी आते हैं, जिन्हें घरों में कष्ट है। जिस घर में शत्रुता और झगड़ा है, वहाँ कोई न कोई विपत्ति जरूर आयगी। मेरी भविष्यवाणी यह है कि इस समय (२४.१२.७८) सरकार की जो वर्तमान चुनावी प्रणाली है, उसमें राग, द्वेष, घृणा आदि बहुत हैं। पहले भी ऐसा होता था लेकिन कहीं– कहीं और कभी–कभी किसी एक–दो परिवारों में। परन्तु अब यह द्वेष, ईर्षा तथा घृणा सारे देश में फैली हुई है। इसलिये भारतवर्ष में तबाही जरूर आयेगी। आनी भी चाहिये। यदि तबाही नहीं आती तो जो कुछ मेरा अनुभव है सारा गलत और बकवास है। (नोट–यह तबाही आज सबके सामने हर रोज अलग–अलग रूप में आ रही

है।) मैं यह क्यों कहता हूँ? यह माया देश है। विचार में जबरदस्त शक्ति है। जहाँ सास–बहू की नहीं बनती, वहाँ विपत्ति आयेगी ही। इसलिये मेरे प्यारो! यदि संसार में सुखी रहना चाहते हो, तो आपस में प्रेम व स्नेह से रहो, घर में शान्ति रखो।

आजकल बहुत से लड़के और लड़कियाँ मंगलीक पैदा होते हैं। क्यों? क्योंकि पति–पत्नि शरीर से भले ही मिलें, परन्तु उनका मन नहीं मिला होता। फिर संतान तो मंगलीक होगी ही, इसे कौन रोक सकता है? हमारे शास्त्रों ने प्रत्येक आदमी के लिये कर्त्तव्य निश्चित किये हुये हैं। स्त्री का पति के प्रति कर्त्तव्य, पति का पत्नी के प्रति कर्त्तव्य, भाई का भाई के प्रति कर्त्तव्य, बच्चों का माँ–बाप के प्रति कर्त्तव्य आदि–२। यदि प्रत्येक आदमी अपने धर्म का पालन करे अर्थात् अपने कर्त्तव्यों को निभाये तो उसका सांसारिक जीवन ठीक चलेगा।

मैं कहता हूँ कि भले ही तुम राम– राम न जपो, परन्तु घरों में शान्ति रखो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। यह माया देश है, माया में वासना तथा संकल्प काम करता है। आजकल अधिकतर सन्तान बिन चाहत या बिन बुलाई पैदा हो रही हैं। स्त्री का भोग केवल संतान उत्पत्ति के लिये कौन करता है? सभी विषय भोग में फंसे हुये हैं। ऐसी अनचाही सन्तानों को पैदा करके तुम उनसे यह आशा रखो कि वे लायक सिद्ध होंगे, गलत है, बिलकुल झूठ है। इसलिये मैं कहता हूँ कि अच्छी संतान पैदा करो। ये मातायें ही सन्तान को बनाने वाली हैं। हिन्दुओं की परम्परा है कि जब तक लड़की कुवाँरी होती है उसको दुर्गा करके पूजते हैं। कोई बाप या बड़ा भाई कुवाँरी लड़की से हुक्का नहीं भरवाता, उसके हाथ की बनी रोटी नहीं खाता। लड़की जब ब्याही जाती है तब वह लक्ष्मी बन जाती है और जब बाल–बच्चे हो जाते हैं तो माँ बन जाती है लेकिन आज सबसे ज्यादा अत्याचार स्त्री जाती पर ही हो रहे हैं।"

"आजकल तो हम गुरूओं ने मनुष्य समुदाय को ठगने के लिये नियमित प्रणाली प्रारम्भ की है। यहाँ कौन है नाम का अधिकारी! सब लोग भौतिक वासनाओं को लेकर गुरूओं के पास जाते हैं। तुम्हारी इच्छायें अवश्य पूरी होंगी किन्तु तुम अपने घर नहीं जा सकोगे। मित्रो! तुम अपने घर तब पहुँचोगे जब मेरे वचनों को सुनकर अनुभवी हो जाओगे। मेरी स्पष्टवादिता से मुझे कोई धन नहीं देता, न दे, मुझे कब धन की चिन्ता है। आजकल सब ड़ेरे, धाम, मठ वाले चेले बनाने में लगे हुये हैं। ये सब क्या कर रहे हैं? चेलों के द्वारा मंदिर मठ बनवा लें, जागीर खड़ी कर लें या अपने लिये मोटर गाड़ी खरीद लें परन्तु कोई सच्ची बात नहीं बताता। इस दुर्दशा को देखकर मैं फकीर के चोले में अनामी धाम से अवतार लेकर यह बताने के लिये आया हूँ कि सच्चाई क्या है? संसारी लोग तो स्वार्थ के लिये हेरा फेरी करते ही हैं परन्तु धर्म–सम्प्रदाय के ठेकेदार तो आम जनता से भी ज्यादा हेरा–फेरी में लगे हुये हैं।

सुनो! तुम्हें सच्ची बात बताता हूँ– तुम्हारी सहायता कौन सा गुरू करेगा? "सुमिरन, ध्यान और गुरू का ज्ञान"। जब–जब मन में कोई संकल्प उठता है, यदि गुरू ज्ञान प्राप्त हुआ है तो उसका प्रभाव मन व मस्तिष्क पर नहीं होगा। इसके अतिरिक्त सुमिरन और ध्यान के अभ्यास से अनावश्यक विचार भी मन में नहीं उठेंगे। याद रखो कोई बाहर का गुरू तुम्हारे अन्दर प्रवेश नहीं करता है। यह तुम्हारे ही विचार की उपज है। यही मेरा संदेश है, इसे भली प्रकार समझ लो। तुम मूर्ख मत बनो; बाहर का कोई गुरू अन्तर में नहीं आता।"

यह आध्यात्मिक क्रांति का अभ्युदय काल है, इसमें देखते जाइये अभी क्या–क्या घटना घटने वाली हैं।

यह तो इब्तदाये इश्क है रोता है क्या।

आगे आगे देखिये होता है क्या? समाप्त

परम संत पुष्कर दयाल जी महाराज के विचार
परम संत हुजूर शब्दानन्द जी के विषय में

मैं आपको अपनी बात बताता हूं। मैंने तीन चार संतों की निष्काम सेवा की है। हमारे एक गुरू थे पंड़ित दयाल (पंड़ित पृथ्वीनाथ कौल) जो दाता दयाल जी महाराज के शिष्य थे। वे हमारे घर में 15 साल लगातार रहे। मेरी पत्नी उनकी बहुत सेवा किया करती थी और मैं भी सुबह–शाम उनकी सेवा करता था लेकिन मैं कभी उनसे किसी चीज के लिए नहीं कहता था। एक बार मेरी पत्नी ने गुरू जी से कहा कि इन्हें भी कुछ समझाओ। वे बोले इसे कुछ समझाने की जरूरत नहीं है। यह अपने आप में पूर्ण है। इसे कुछ नहीं चाहिए, यह पैदाइशी संत है। मुझे इससे ड़र लगता है क्योंकि यह कभी कुछ बोलता ही नहीं, कुछ कहता ही नहीं। मैं सोचता हूं कि यदि इसने कभी कुछ कह दिया या मांग लिया और मैं वह पूरा न कर पाया तो मेरे लिए यह बहुत मुश्किल होगा। लेकिन एक दिन वे हमें छोड़कर चले गये।

एक बार मैं अपने गुरू पंड़ित दयाल जी को याद करके बहुत रोया और रोते–रोते सो गया। कब नींद आ गई पता ही नहीं चला। सुबह किसी ने 5.00 बजे जब दरवाजा खटखटाया तो आंख खुली। उठ कर देखा तो दरवाजे पर रवि पंड़ित का बड़ा भाई मनोहर खड़ा था। मैंने आश्चर्य से पूछा कि तुम इतनी सुबह कैसे और वो भी बिन बताये! उसने कहा कि तुम्हें पता नहीं कि यहां फरीदाबाद में मानव दयाल जी 3–4 महीने से रह रहे हैं। मैंने कहा कि मुझे पता नहीं। उसने कहा मैं उदयपुर से आ रहा हूं और मुझे उनसे अभी मिलना है। मुझे उनके पास ले चलो। मैंने कहा कि नहा–धो लो, नाश्ता कर लो, फिर चलेंगे।

उस समय मैं मानव दयाल जी को तो नहीं जानता था परंतु उनकी कोठी जो 21 सैक्टर में थी की लोकेशन मुझे मालूम थी। मैं

उसे अपनी मोटर साइकिल पर वहां ले गया। वह तो महाराज जी के पास अंदर कमरे में चला गया और मैं दरवाजे के पास खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद उसने मुझे अंदर आने को कहा और मानव दयाल जी से मेरा परिचय कराया जिसमें पंड़ित दयाल का भी जिक्र किया कि पंड़ित दयाल इनके घर पर 15 साल यहीं फरीदाबाद में रहे थे। मानव दयाल जी ने मेरी ओर गौर से देखा और इशारे से पैर दबाने को कहा। बस मेरा पैर दबाने का सिलसिला शुरू हो गया। फिर तो रोज सुबह–शाम दफ़्तर आते–जाते उस कोठी पर मेरा चक्कर लगने लगा। इसी दौरान मेरी मुलाकात श्री मंगल देव शर्मा से भी हो गई।

मानव दयाल जी की सेवा करते–करते मैं पंड़ित दयाल जी को मानव दयाल में ही देखने लगा। वहीं पर मेरी भेंट हुजूर शब्दानन्द जी महाराज से भी हुई। एक दिन मानव दयाल जी ने मुझे बड़े प्यार से कहा कि 'तुम शब्दानन्द का साथ कभी मत छोड़ना।' उस समय मैं कुछ समझा नहीं, फिर भी मैंने हां कह दिया। बाद में जब हुजूर मानव दयाल जी महाराज चोला छोड़ गये और कोठी पर हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के रहने का कोई ठिकाना नहीं रहा क्योंकि वहां पर खाना बनाने वाला कोई नहीं था। तो हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने कहा कि 'मैं बलिया चला जाता हूं और महाराज जी का काम बीच–बीच में आकर करता रहूंगा।' उस समय तक धुरपद धाम दुर्गापुर में भी रहने की कोई व्यवस्था नहीं बनी थी।

मेरी पत्नी ने कहा कि क्यों न हम हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को अपने घर पर रहने के लिए कहें। हमें तो वैसे भी संतो का संग पहले ही प्रिय है। मैंने कहा यह ठीक है। हमने हुजूर शब्दानन्द जी महाराज से ऐसा ही कहा और वे मान गये। एक दिन हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने हमें बुला कर कहा कि 'मैं आप लोगों के यहां रहता हूं, खाना खाता हूं, मैं आप लोगों को कुछ देना चाहता हूं।' हमने कहा महाराज जी आप ये कैसी बात करते हैं आप हमारे पिता के समान हैं, हमारे गुरू हैं, हमें कुछ नहीं चाहिए।

इस पर उन्होंने कहा कि एक शर्त पर मैं आपके यहां रूक सकता हूं कि मैं आपको सत्संग दिया करूंगा। समय आप निश्चित कर लो। हमें यह बात बहुत अच्छी लगी। अंधे को क्या चाहिए–दो आंखें। हमने कहा महाराज जी हमें यह मंजूर है। हम 10.00 बजे तक बच्चों के काम से निवृत होकर उन्हें ऊपर के कमरे में भेजकर दोनों मिया–बीबी महाराज जी के पास नीचे के कमरे में बैठ जाते और देर रात तक सत्संग सुनते रहते। वे 11.00 बजे तक कभी–कभी 11.30 तक सत्संग देते, हम ध्यान से सत्संग सुनते और उसे रिकार्ड भी करते जाते थे। इस प्रकार हुजूर शब्दानन्द जी महाराज हमारे घर पर 6–7 महीने ठहरे और रोज हमें सत्संग देते थे। उनके सतसंग के 150–200 कैसेट अभी भी हमारे पास हैं जो अब धुरपद धाम में रख दिये गये हैं।

इस बात का मुझे बाद में अहसास हुआ कि हुजूर मानव दयाल जी ने मुझे क्यों कहा था कि शब्दानन्द का साथ मत छोड़ना। यह उनके द्वारा मुझे नाम दान दिया गया था। वे जानते थे कि इसमें (मुझमें) भक्ति और प्रेम सब कुछ पहले से ही भरा हुआ है लेकिन ज्ञान नहीं है। इसलिए उन्होंने मुझे यह नाम दान दिया था। इसका प्रभाव यह हुआ कि जैसे एक भृंगी एक कीड़े को कींचड से उठा कर लाता है, उसका सिर काटता है और अपने मिट्टी के बने खोल में बंद करके उसके ऊपर अपनी ध्वनि 'भिन्न–भिन्न' या 'हन्न–हन्न' करके उस कीड़े को एक दिन भृंगी ही बना देता है, ऐसे ही हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने मुझे उन 6–7 महीनों में अपने शब्दों की मार से मेरे अन्दर सतज्ञान भर दिया। इससे क्या हुआ! मेरे अन्दर एक जबरदस्त परिवर्तन आ गया और एक दिन मैंने अनुभव किया कि मेरे बोलने का ढ़ंग बदल गया, रहने का ढ़ंग बदल गया, देखने का ढ़ंग बदल गया, मेरे व्यवहार का ढ़ंग बदल गया।

हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने मुझे जो नाम–दान दिया था उसका मैं आज तक पालन करता आ रहा हूं। मैंने हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को आज तक नहीं छोड़ा। जब तक वे धाम

पर रहे अपने तन, मन और धन से अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनकी सेवा करता रहा और अब भी कर रहा हूं। क्योंकि मेरे ऊपर गुरू ऋण है, उसे मुझे अपने इस भौतिक शरीर में रहते हुए अपनी अन्तिम सांस तक उतारते रहना है, इसके लिए मुझे चाहे कितने भी कष्ट उठाने पड़ें, कोई परवाह नहीं है।

एक बार ग्वालियर में सत्संग के दौरे में (उस समय हुजूर शब्दानन्द जी महाराज अस्वस्थ होने के कारण हमारे साथ नहीं थे) मुझे अपने ऊपर कुछ अफसोस हुआ कि क्या मैं इस सम्मान के योग्य हूं जो ये सत्संगी मुझे दे रहे हैं? क्यों मैं अपने कर्मों को खराब कर रहा हूं? उस समय यह सोचते–सोचते मैं समाधि में चला गया और दूर बैठे हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने संदेश भिजवाया कि 'ये सत्संगी तुझे सम्मान नहीं दे रहे, अपने गुरू को दे रहे हैं और तू 'तू' नहीं है, तू तो गुरू का नुमाइंदा है, गुरू का काम कर रहा है, इसलिए तू अफसोस मत कर। यह सब तू मुझे अर्पण कर दे और स्वयं को इन अहसासों से आजाद रख।' बस उसके बाद से मैं निर्भीक होकर काम कर रहा हूं। अब जो भी अच्छा या बुरा हो रहा है, गुरू की जात से हो रहा है। अब मेरी हस्ती और गुरू की हस्ती में कोई अंतर नहीं है क्योंकि हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने मुझे साफ तौर पर कह दिया है कि–

'नहीं गुरू नहीं चेला तू है, दोनों दशा से न्यारा है।
हद बेहद के परे ठिकाना, तेरा ही सकल पसारा है।'

मालिक सब का कल्याण करे!

पुष्कर दयाल

शोक संदेश

बड़े दुख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हमारे आचार्य श्री श्याम लाल शर्मा जी के छोटे भाई श्री श्रीनिवास शर्मा जी की पत्नि श्रीमति चमेली देवी का स्वर्गवास दिनांक 29 मई 2014 को ह्रदय गति रूक जाने से हो गया है। हम मालिके–कुल से प्रार्थना करते हैं कि वे दिवंगत आत्मा को अपनी गोद में ले लें और शोक संतप्त परिवार को इसे सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

आचार्य डॉ0 अरविन्द पराशर, होशियारपुर के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में

(युग संदेश की प्रस्तावना से उद्धृत)

'महती देवता ह्येषां नर रूपेण तिष्ठति'

पूज्यवर श्री शब्दानन्द जी महाराज एक अत्यन्त विनम्र संत प्रकृति के साक्षात् तपः पूत गुरू भक्त हैं। आपने होशियारपुर (पंजाब) के परम संत द्वय परम पूज्य परम दयाल फ़कीर चंद जी महाराज और परम संत मानव दयाल डॉ0 ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज की परम प्रज्ञादायी सत्संगति में रह कर संतत्व की श्रेष्ठ आचरण पद्धति को अधिगत किया है। मन, वाणी, कर्म एवं व्यवहार में समस्त मानवता के प्रति निश्छल प्रेम, सर्वत्र परमात्मा की उपस्थिति का बोधाभास और जन गण मन के प्रति उदार करूणा इनके तपः पूत व्यक्तित्व में सहज परिलक्षित होती है। आज के घोर भौतिकता प्रधान युग में ऐसे संत का दर्शन और सानिध्य हमारा परम सौभाग्य है।

पूज्यवर श्री शब्दानन्द जी महाराज ने युग पुरूष जगद् गुरू परम दयाल फ़कीर बाबा के पराअध्यात्म और प्रशान्त क्रांति दर्शन के रहस्य का उद्घाटन, गुरू–ऋण से मुक्ति हेतु तथा समस्त मानव जगत का कल्याण पंथ प्रदर्शित करने के लिए एक सद् ग्रंथ 'युग–सन्देश' में विश्व मानव के अभ्युदय एवं कल्याण के शिव संकल्प को संग्रथित किया है।

आत्मा आनन्द सागर है। अतएव मनुष्य स्वभावतः सुख–आनन्द की खोज करता है। उसके समस्त क्रिया कलाप सुखेच्छा से ही प्रेरित हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप होने के कारण मनुष्य प्रत्येक स्तर पर आनन्द की खोज करता है और आनन्द की प्राप्ति से ही उसे सच्ची शांति का अनुभव होता है। किन्तु यह विडम्बना ही है कि, सच्चा मार्ग दर्शक सुलभ न होने के कारण, उसके सभी प्रयास विफल होते है। माया जन्य प्रपंचों से त्रस्त मानव अन्ततोगत्वा

निराश होता है। संसार के क्षणिक सुखों में नित्यानन्द की प्राप्ति की आशा मृग तृष्णा मात्र है। परम दयाल फ़कीर बाबा का स्पष्ट मत है कि शाश्वत सुख की प्राप्ति परम तत्व स्वरूप के दर्शन मात्र से होती है किन्तु इसके लिए जिज्ञासु को बहिर्मुखी साधनों का परित्याग कर, अन्तर्मुखी साधना करना अनिवार्य है।

स्पष्ट है कि सांसारिक भोगों से जीव को आध्यात्मिक परम सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। परिणामतः जीवन में एक भटकन! एक कुरेद! एक तपन! किसी मरहम–ए–राज सार–भेदी संत सतगुरू के दर्शन की, प्रत्येक जिज्ञासु की अंतरात्मा में उद्दीप्त होती है।

ऐसी सात्विक जिज्ञासु आत्माओं को अनेक पाखण्डी लोग स्वयं को भगवान तथा अवतार घोषित कर, नये–नये पंथ चला रहे हैं और स्वानुभूति के स्थान पर शब्दाडम्बर के मकड़ जाल में बुरी तरह उलझा कर मानव और मानवता का दोहन–दलन कर रहे हैं। यह है आज के विश्व मानव की नियति और वैश्विक समस्या।

आज के आध्यात्मिक जगत की विडम्बना है कि मानव अपनी आध्यात्मिक खोज के प्रति पूर्णतः सच्चा और ईमानदार होते हुए भी, उसे सच्चा ईमानदार मार्ग दर्शक महा दुर्लभ हो रहा है। स्वामी विवेकानन्द के नरेन्द्र रूप सरीखे अनेक जिज्ञासु आत्म साक्षात्कार के लिए दर–दर भटक रहे हैं किन्तु उन्हें स्वामी राम कृष्ण जैसे परम हंस नहीं मिल रहे हैं। लगता है जैसे भारत के ही सहज अध्यात्म–उर्वर–भूमि को निहित स्वार्थी तस्करों ने पूर्ण रूप से शोषित–प्रदूषित कर डाला है।

संत शब्दानन्द जी के मतानुसार, 'मानवता धर्म में न कोई बड़ा है, न छोटा, न कोई ऊँच है, न नीच। परस्पर प्रेम, शील और सहानूभूतिपूर्ण व्यवहार से ही मानव और मानवता का सच्चा अभ्युदय हो सकता है।' यही वेद वाणी भी कहती हैः

'अज्येष्ठा सो कनिष्ठास एते, सं भ्रातरो वा वृधुः सौभगाय।'

अथवा 'समानं मंत्रम्भिमन्त्रये वः समानेव वो हविषा जुहोमि।''

(पूरूष अजायब की प्रस्तावना से उद्धृत)

परम संत श्री शब्दानन्द जी महाराज की कृति 'पुरूष अजायब' राधास्वामी मत के अत्याधुनिक चिंतन की रचना है। राधास्वामी मत की पर्माध्यात्म के क्षेत्र में स्पष्ट धारणा है कि धर्म अनुभूति का विषय है, यथार्थ की सूक्ष्म दृष्टि है, मूल्य बोधक जगत का ज्ञान है। इस धारणा के आधार पर कहा जा सकता है कि इस कृति के रचयिता का आत्मानुभव प्रत्येक शब्द में गुंजरित हुआ है।

साधना के क्षेत्र में संतों का एक वर्गीकरण विद्यमान है– शास्त्रविद् संत और आत्मविद् संत। शास्त्रविद् संत मंत्रों और श्लाकों तथा भिन्न–भिन्न शास्त्रोक्त वचनों की व्याख्या ही करते हैं, ऐसे संतों में व्याख्याकार अधिक मुखरित रहता है। इसीलिए आत्मानुभव के अभाव के कारण यत्किंचित् मनमुखता के भी दर्शन होते हैं। दूसरी ओर आत्मविद् संत हैं। जिन्होंने साक्षात् तत्व और सत्य का साक्षात्कार कर लिया है, जो अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो गए हैं। ऐसे संतों की अन्तःसाक्ष्य प्रांजल प्रज्ञा के पूर्ण प्रकाश में उनका स्वानुभाव और परम तत्व–साक्षात्कार होता है। इसी लिए आत्मविद् संतों का साधनात्मक महत्व स्वीकृत होता है। इन्हें पूर्ण गुरू, कामिल मुर्शिद और वक्त गुरू की संज्ञा दी गई है। हमारा सौभाग्य है कि परम संत शब्दानन्द जी महाराज की चेतना ने, परमानुभूति के साक्षात्कार के उपरांत, संत की विनम्र सादगी और प्रेम की ऊर्जा को आत्मसात् कर लिया है, जिसका प्रसार उनके संपर्क मात्र से प्रसारित हो रहा है, जिससे सामान्य जन भी उनकी संगति में उसी प्रकाशानुभव को ग्रहण कर रहा है।

परम संत शब्दानन्द जी महाराज के पास साधनात्मक सूत्र हैं, शब्दाडम्बर नहीं; साक्षात्कार है, प्रवंचना नहीं; शब्दानुभूति है, पाखंड नहीं। इसी कारण प्रत्येक साधक को, परम संत शब्दानन्द जी महाराज के संसर्ग में पूर्ण शांति, निःस्वार्थ प्रेम, और आनन्द की अनुभूति होती है।

परम संत परम दयाल फ़कीर बाबा और मानव दयाल डॉ0 ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज की साधनात्मक धारा को अगर आज

किसी ने सुरक्षित और संवर्धित किया है, तो इसका श्रेय केवल मात्र परम संत शब्दानन्द जी महाराज को ही है। 'पुरूष अजायब' कृति में साधना सम्पन्न गुरू ने राधास्वामी मत के दार्शनिक आधार पर परम सत्य के स्वरूप का उद्घाटन किया है। इनकी दृष्टि में वेदान्त का ब्रह्म रचना के केवल दूसरे वृहत् खंड का स्वामी है, क्योंकि वह मन और माया से पूर्णतः मुक्त नहीं है। ऐसा परम तत्व, जिसमें किंचित्मात्र भी माया रहती है, मालिके कुल्ल नहीं हो सकता।

राधास्वामी नाम की ध्वन्यात्मक स्थिति को स्पष्ट करते हुए शब्दानन्द जी महाराज की धारणा है कि वह एक ऐसा सत् शब्द है जिसमें नाद, ध्वनि और उसकी शक्ति विद्यमान है।

राधास्वामी मत निर्मल एवं परम प्रेम का पंथ है। इन्होंने समझाया है कि प्रेम और आध्यात्मिक शक्ति की प्रथम धारा, जो इस स्रोत से उठती है, वह पुनः इसी स्रोत की ओर आकर्षित होती है। इसलिए परम प्रेम ही राधास्वामी है। शब्द और सुरत दोनों ही तत्व रूप से समान और एक ही हैं। इसी लिए सुरत शब्द के प्रति स्वतः आकर्षित रहती है। इसलिए परम प्रेम ही राधास्वामी है। परिणामतः संत सतगुरू पराआध्यात्मिक परम तत्व का सच्चिदानन्द स्वरूप भी है जो जगत् के दुखी मानव मात्र का, रूग्ण मानसिकता और हताश मानव का कल्याण, केवल अपनी करूणा, प्रेम और विद्युद्धारा (Radiation) से करता है। और यही संत सतगुरू की पहचान है। जहां विद्यामण्डित अहंकार या वैयक्तिक एषणा का लुब्ध संस्कार हो, वह संत सतगुरू नहीं है। यही एक मात्र कसौटी है जिसे राधास्वामी मत में गुरू की पहचान के लिए सुनिश्चित किया है।

परम पूज्य शब्दानन्द जी महाराज की यह कृति 'पुरूष अजायब' निश्चय ही सम्मान की अधिकारिणी है, क्योंकि यह सत्साहित्य में उत्पन्न वर्तमान शून्यता की रिक्ति पूर्ति करती है तथा साधकों में एक ऐसा आश्वासन प्रदान करती है जिससे साधक के प्रति उनकी आन्तरिक यान परक यात्रा से सम्बल और उपलब्धि को निश्चय स्थापित करती है।

सभी आध्यात्मिक साधकों को ध्यान पूर्वक 'शब्द–यान कप्तान–के आदेशों' का अनुपालन करना चाहिए। मालिके कुल्ल ग्रंथ लेखक को चिरायु प्रदान करें, ताकि संत मत (राधास्वामी मत) की वैज्ञानिक अवधारणाओं को स्पष्ट करने के लिए जो अनेक कृतियां अभी राह देख रहीं हैं, वे प्रकाशित हो सकें।

('हिदायतनामा' पुस्तक के प्राक्कथन से उद्धृत)

परमपूज्य परमश्रद्धेय परमसंत श्री शब्दानन्द जी महाराज परमदयाल परमसंत बाबा फकीर की असीम अहैतुकी कृपा और परम संत मानवदयाल श्री डॉ. आई0सी0शर्मा के स्नेहिल आशीर्वाद से परमसंत–हंस की निर्मलता, शांति, प्रेम, आह्लाद, भक्ति, अहोभाग्यता और धन्यता को प्राप्त सद्गुरू स्वरूप ब्रह्मनिष्ठ रूप हैं। इन्होंने अपनी व्यक्तिगत आत्म साधना से स्वयं के स्व को फकीरी उन्मुक्तता आन्तरिक आनन्द और अन्तर्गत शब्द की गहनता को अर्जित किया है। आज जब हम राधास्वामी मत के भिन्न–भिन्न स्वयंभू आचार्यों अथवा परमाचार्यों की ओर देखते हैं, तो कहीं न कहीं मन में चिन्त्य बोध जागृत होता है कि नाम–साधना की यौगिक आराधना के लिए प्रतिबद्ध यह मत व्यक्तिपूजा तल्लीन आत्महंता वृत्ति का शिकार हो रहा है। साधक शब्द रूपी गुरू का विस्मरण कर चुके हैं और बटमारों की तरह लबारों का एक झुंड अपने संपूर्ण वितंडावाद से भक्तों, प्रमियों और साधकों को भ्रमित कर रहा है। यह आज के आध्यात्मिक जीवन और जगत की वस्तुस्थिति है। मठाधीशों द्वारा आदेशित सामूहिक ध्यान–साधना भी, फिर से, किसी अन्य शिवव्रत लाल जैसे आत्मनिष्ठ तपस्वी, वैरागी को जन्म नहीं दे पायी और न ही फकीर जैसा फक्कड़ परमदयाल आत्मदानी राधास्वामी समाज में पुनः जन्म ले पाया है। जबकि इन श्रेष्ठ संतों की शाश्वत आत्मा की सशक्त तरंगे आज भी विद्यमान हैं। ऐसी स्थिति में उसी पीढ़ी के पूज्य श्री शब्दानन्द जी को देखकर आशा जागती है कि अभी वे हैं जो अपने गुरू के कार्य को सम्पन्न करने के लिए वृद्धावस्था में भी कर्मण्य हैं, दत्तचित्त हैं। नमनीय संत पूज्य शब्दानन्द जी स्तुत्य हैं।

हिदायतनामा हालांकि पूज्य श्री शब्दानन्द जी ने लिखा है, परंतु इसका एक–एक शब्द और एक–एक भाव परमदयाल जी की परा प्रज्ञा द्वारा साक्षीकृत सत्य का उद्घाटन करता है। जैसे सीपी अहोभाग्यता से, स्वाति की बूंदों को, अपने हृदय में धारण करता है, वैसे ही परमदयाल के इन उच्चरित शब्दों को श्री शब्दानन्द जी ने आत्मसात किया है और मानवता के कल्याण के लक्ष्य से बाबा फकीर, डॉ ईश्वरचन्द जी से सम्बद्ध सभी शिष्यों–साधकों को पुनः स्मरण करवाने के लिए, उन्हें उनके मायाजन्य विस्मरण से बाहर लाने के लिए ताकि गुरू–ऋण से मुक्ति दिलाने के लिए शब्दानन्द जी ने इस हिदायतनामे का प्रकाशन जगत कल्याणार्थ किया है।

पूज्य श्री शब्दानन्द जी महाराज केवल धुरपदधाम पर अवस्थित श्रेष्ठ साधक ही नहीं हैं बल्कि कोमल मन, कल्पनाशील विवेकी मानव और मानवता प्रेमी कवि भी हैं। उनका परिभू स्वयंभू आत्मस्थ कवि वर्तमान आध्यात्मिक समाज की हीनता, दरिद्रता देखकर विशुब्ध भी होता है। यह विक्षोभ उनकी अनेक कविताओं में, विशेषकर उनकी कृति 'युगबोध' में प्रकट हुआ है। इनका स्पष्ट कहना है कि हमें भी हमारे गुरूओं के कर्त्तव्य का बोध होना चाहिए ताकि उनके मिशन को पूरा करने का साहस, संकल्प, निर्विकल्पिक चेतना और कर्मठता होनी चाहिए, तभी हम शिष्यत्व के वास्तविक अधिकारी होंगे। गुरू ऋण से मुक्ति ही हमारी साधना की सिद्धि है। वह नाम जप या नामदान थोथा है–अगर हमने गुरू के कर्म को सम्पन्न करने में कोताही की तो। 'हिदायतनामा' हमारी इसी जड़ता को दूर करने को संतसंकल्प है।

डॉ0 अरविन्द पराशर,
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
सनातन धर्म कालेज,
होशियारपुर (पंजाब)

आत्मा की भाषा का नाम हैः शब्दानन्द

डॉ0 जनार्दन राय बलिया

('युग–बोध' नामक पुस्तक की प्रस्तावना से उद्धृत)

शब्दानन्द राय वस्तुतः शब्द हैं, आनन्द हैं, शब्दार्थ हैं और सुस्थिर सहजतर सत्य भी। **अन्यथा न लें तो कहना चाहूंगा– 'आत्मा की भाषा का नाम है 'शब्दानन्द'।**'आध्यात्मिक साधना में रत राय साहब पर शिक्षक भारी है या मानवता मण्डल की आभा अथवा गद्य–पद्य दोनों ही में समान रूचि रखने वाले साहित्यकार की सदाशयता, कुछ कहना कठिन है। राय साहब के सस्वर पाठ में संगीत की जो सहज सुगन्ध और मधुर ध्वनि निकलती है उसे मां शारदा की कृपा ही कही जा सकती है। श्री राय की उंगलियों में अद्भुत शक्ति है। उनकी कलाई में कलम की ताकत है तो तूलिका का कमाल भी जो हर किसी फनकार का ध्यान बरबस ही आकृष्ट कर लेती है। कलमकार ताकतवर है पर उसकी विनयशीलता और विनम्रता भी अजीब है। समर्पण में मनसाभिव्यक्ति की पंक्तियों पर गौर करें–

रखती जो सदा नियंत्रित युग की गति को,
करती जो सदा समाहित युग की मति को,
जो सदा पढ़ाती युग को पाठ विनय का,
जिसके कंधों पर है दायित्व समय का,
उस विश्व मनीषा को युगबोध समर्पित।
युग प्रश्नों का यह मौलिक शोध समर्पित।।

यह समर्पण कवि की उर्ध्व चेतना के प्रति अतिशय तन्मयता का प्रतीक है। राय साहब ने जिन्दगी के सात्विक सुखोपभोग के साथ सृष्टि के झंझावतों से मुक्ति के रहस्यों को निकट से देखने की भरपूर कोशिश की है। वाकई, श्री राय को जीवन का सम्यक् बोध है। युगबोध के विभिन्न सोपानों, समर्पण और मंगलाचरण, मानव–मानवता, जीवन–संध्या, विज्ञान, ज्ञानोपदेश, प्रेम (इश्क),

परतंत्रता, क्रांति और अन्ततः जीवन संध्या जो जीवन का आखिरी पड़ाव है, की दहलीज पर खड़ा कवि कबीर की सी क्रांति का आह्वान करता है। वस्तुतः शरीरान्त जीवन का अन्त नहीं, प्रस्थान बिन्दु भी है। प्रारम्भ और आसन्न अन्त जो भौतिक आंखों से दिखाई दे रहा है, इतना ही नहीं कुछ और भी है जिसके लिए राय साहब के अन्तर में अकुलाहट है। ऐसा आभास हो रहा है कि मानवीय धरातल पर राय साहब मोक्ष को कर्म के भीतर देख रहे हैं और उसे देखते हुए मानव को क्रांति के लिए विवश भी करते हैं। सच पूछें तो यह बेचैनी वैयक्तिक नहीं, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर भी है।

एक ओर विश्व मनीषा के लिए यह संसार रहस्य है तो दूसरी ओर एक नीड़ भी। इस विश्व नीड़ में आकण्ठ आनन्द की अनुभूति करता हुआ कवि गा रहा है–

मनुज मनुज में अनुज अनुज के
हो संबंध सगे
जगमग ज्योति जगे।

शब्दानन्द जी वाकई भारत की सांस्कृतिक परम्परा के प्राज्ञ पुरूष हैं और वे 'जीवन महाभियान' में जहां एक ओर जीवन की क्षणभंगुरता– 'जीवन की एक लहर मिट रही' को निहार रहे हैं, वहीं पर एक बेहतर बिम्ब खड़ा करते हुए प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति द्वारा जीवन की सर्जनात्मक पृष्ठभूमि को बड़ी बारीकी से उरेहते हैं–/छीट पंच महातत्व उर्वरक, प्राण बीज ऋत किसान बो गया/दिवस मास वर्ष क्रम विकास में जीव का बिरवा जवान हो गया/वसुन्धरा के विशाल क्षेत्र में जिन्दगी की एक फसल उग रही/।

सामाजिक जटिलताओं और उपनिवेशवादी व्यवस्था के विरूद्ध जिन बातों को लेकर भारतेन्दु बाबू चिन्तित रहे और रचनाध र्मिता में 'स्वत्व के बोध' की चर्चा की कुछ उसी प्रकार की परिस्थितियों से प्रेरणा लेकर राय साहब ने युगबोध के भीतर स्वबोध ा को जागरित किया और जाग्रत किया अपने भीतर की ऊर्जा को जाति जागरण के लिए, राष्ट्र के लिए और कुल के ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय

क्षितिज पर मानवीय प्रकाश के लिए। वस्तुत 'युगबोध' में संग्रहित कविताओं के माध्यम से कवि स्वबोध से जीवन यात्रा को सुगम बनाकर यात्रा में आई कठिनाइयों का हल निकालना चाहता है। बड़ी सावधानी से रचनाकार ऋग्वेद की ऋचा विश्व नीड़ की बिखरी त्रासदी पर एक दृष्टि डालता है और उसके टूटने और बिखरने से मर्माहत कवि–

'टूट चुका परिवार पुराना, छूट चुका आधार पुराना,
शिथिल पड़ गया स्नेह शील का अपना शिष्टाचार पुराना।'

यह कहकर संतोष तो कर लेता है पर तार–तार होते संबंधों से व्यथित शब्दानन्द का न केवल भौतिक शरीर अपितु अन्तर में बैठे हुए परमप्रभु का अन्तर भी विदीर्ण होता सा प्रतीत होता है। वह बेचैन है, व्यथित हो वह चोर दरवाजे की बात करता है–

खुले चोर दरवाजे लेकिन सिंह द्वार पर लटके ताले
000 000 000 000
आदर्शों के सिद्धान्तों के सिर पर लादे भारी गट्ठर
व्यवहारों के भाष्य बिना जो लगते जैसे कंकड़ पत्थर।

सिद्धान्त और व्यवहार के तालमेल का अभाव सामाजिक संरचना के ताने–बाने को छिन्न–भिन्न कर रहा है। ऐसी स्थिति में राय साहब जैसे कवि व्यक्ति के लिए एक गम्भीर चुनौती है और वे इस वक्त भी उस चैलेंज को स्वीकार कर समाधान प्रस्तुत करने को बेताब हैं पर शिथल पड़ रही इन्द्रियां चुक सी गई हैं फिर भी वे कहते हैं–/प्रतिपल चल–चल नवल प्रांत पर/ जल–थल–नभ–तल पदाक्रांत कर/।

वस्तुतः मनुष्य स्वयं में समस्या है और इससे निजात पाने के लिए संघर्ष भी करता है। कैसी विडंबना है कि–**'अस्त्र उठाकर अपने हाथों, अपना ही सिर धुन लेता है'** झंझावात है, परेशानियां हैं, नैतिक मूल्यों का क्षरण है पर राय साहब जिस मानवीय मर्यादा और इंसानियत की लौ को बचाने और बनाये रखने के लिए बेताब हैं उसका आलम कुछ और ही है,

देखिए न–

'एक शब्द बस मानवता, निज व्यापकता में अखिल विश्व के
निर्बल और सबल को लेकर, एक साथ ही चल सकती जो।'

वैसे युगबोध के वर्ण्य विषय मानव, मानवता, मनुजता, मानवीय व्यवहार, पहचान–ए–इंसान, मानवता की राहें इत्यादि विभिन्न शीर्षकों में एक ही विषय इंसानियत का आह्वान और आख्यान है पर, इससे यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि इन विभिन्न शीर्षकों में पिष्ट–पेषण है। आप पायेगें कि विभिन्न धर्मों, समप्रदायों के मूल में अवस्थित अलौकिक चेतना के प्रकाश से मानवीय जगत आप्लावित है और प्रकाशित भी। मनुजता के लिए मानव रूप ही पर्याप्त नहीं है–

'मूल्य शाश्वत खो गये जिसके सभी
जिन्दगी ही क्या रही उस स्वत्व की
हो गया हो नष्ट जिसका धर्म ही
सार्थकता क्या रही उस तत्व की
क्या हुआ यदि रूप मानव का मिला
कोटि क्रम चलते रहे अपने सभी
मनुज अपने आप को कैसे कहें?
मनुजता ही जब नहीं हममें रही।'

श्री राय के हृदय में पल रही अनुभूति बड़ी गहरी है। इसका अनुमान लगा पाना कठिन है और मानें तो उतनी ही गहरी है सौंदर्य बोध की तीव्रतर अनुभूति, जिसके प्रति मानवीय इड़ा की ललक सदैव बनी रहती है। दुख, दर्द, विषाद, छीना–झपटी, मनोमालिन्य, दुराव, अत्याचार सबका कारण मनुष्य के भीतर का कालुष्य है। राय साहब इसके समाधान की ओर इंसान का ध्यान आकृष्ट करने के लिए प्रयास करते हैं और बार–बार 'युगबोध' की पंक्तियों से हमें अभिप्रेरित करते हुए से दीख पड़ते हैं। कभी–कभी पुनरावृत्ति का आभास भले ही होने लगता है पर सच्चाई तो यह है कि कवि सिर्फ कलमकार नहीं है, **वह युगऋषि है** जो अन्तरअवस्थित भाव–भंगिमाओं से कटे पर मलहम और पथराये दिल वालों के हृदय में अलौकिक

भाव भरना चाहता है, जिससे दिव्य आलोक का प्रस्फुटन हो। इस वक्त मुझे एक बात याद आ रही है और वह यह कि–'सब रोगों की एक दवा, मिट्टी, पानी, धूप, हवा।' कभी इस बात पर हंसी आती थी पर अब जब प्रदूषण का कहर सिर चढ़कर बोलने लगा है तब इस सच्चाई का कुछ–कुछ आभास होने लगा है। ठीक कुछ ऐसा ही जब धरती का कण–कण दुर्वृत्तियों से आच्छादित हो चला है, राय साहब की इन पंक्तियों की अर्थवत्ता साफ–साफ नजर आ रही है और अब एहसास होने लगा है कि मानव और मानवतावाद में हर समाधान सन्निहित है। जरूरत इस बात की है कि उस पर सही–सही अमल हो–

'सभी समस्याओं का पोषक
औ' नवनीत सभी शास्त्रों का मानवता है'

यही नहीं कवि अन्ततः सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान भी मानवता की प्रतिष्ठा में ही खोजता है–'युग की सकल समस्याओं का/अविकल अविफल समाधान/बस मानवता है'। वैसे जागरण गीत, जीवन सत्य, जीवन लक्ष्य, आत्मबोध, निर्पेक्ष सत्य कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में जिन्दगी में आलोक भरने का ही काम करते हैं पर कवि–'तुम कौन हो?' पूछकर चौंकाने का भी कम प्रयास नहीं करता। वह कहना यह चाहता है कि 'तत्त्वम् असि' वाकई मनुष्य महनीय है और अपने आप में–

'शब्दमय ब्रह्माण्ड में झंकार हो तुम
सप्त स्वर हो, ताल हो, संगीत हो तुम
प्रणव हो, श्रीवेणु के उद्गीत हो तुम'।

सच है कि मनुष्य समाज संबंधों का जाल है। इस जाल में मनुष्य एक इकाई है और इसे राय साहब काव्य पंक्तियों के समर्थन में बहुत दूर–दूर तक की यात्राओं के दरमियान स्वाभाविक रूप से बहुत कुछ कहते हुए से प्रतीत होते हैं। 'कॉज्मस अहं ब्रह्मास्मि' श्री राय की ऐसी ही कविता है जिसमें ब्रह्म की वैज्ञानिक व्याख्या अन्तरंकित है। कवि जहां मानवता के गीत गाता है ब्रह्म की प्रतिष्ठा और उसकी अनुभूति को शब्दों में उतारना चाहता है, वहीं बौद्धिक

पक्ष की दृढ़ता के लिए इड़ा के ओज को अंगीकार करता है फिर झटके से मुड़ता है और अपनी धरती, अपनी माटी और अपने ध्वज को लहराने के लिए व्यग्र हो उठता है–

'कर्म ज्ञान की भक्ति भाव का सहज प्रतीक तिरंगा
यथा त्रिवेणी संगम नभ में यमुना–सरस्वति–गंगा'

कुल मिलाकर मैं अब कहना यह चाहता हूं कि छंदबद्ध कविताओं में कवि का अनुशासित रूप स्वयं ही आख्यायित है। उस संबंध में कुछ कहने का कोई औचित्य नहीं है पर मुक्त छंद वर्णित शीर्षकों में भी गजब का अनुशासन, संयम और गेयता का अद्‌भुत पुट है। छंदमुक्तता तो कहीं है ही नहीं, स्वछंदता और स्वेच्छाचार दूर–दूर तक दिखाई नहीं दे रहा है। हां, अध्यात्म की एक अद्‌भुत लहर है जो इन्हें आधुनिकता विशेषकर प्रगतिवादियों के पेचोखम में पड़ने से बचाती है। मोह तम पुंज, निर्वाण पथ, मुक्तछंद में वर्णित कविताएं है जो कहीं न कहीं वर्तमान जनतांत्रिक व्यवस्था पर व्यंग्य तो करती ही हैं और माने तो एक छटपटाहट भी है राम राज्य के सपनों से लगाव का। राम के आदर्शों की रक्षा के लिए कवि आकुल है। प्रगतिवादियों की रोटी का सवाल भी उसे मथ रहा है और–

जिसकी उंगली पर नचता है सारा विश्व विधान
रोटी मत कह मूरख यह है, भूखे का भगवान।

ऐसे परिवेश में रोटी में राम का दर्शन करने वाले राय साहब प्रणम्य हैं। राह–ए–इश्क, फैसला न हुआ, उनका नाम, इश्क, उच्च कोटि की उर्दू मिश्रित कविताएं हैं जो हिन्दुस्तानी तहजीब की सशक्त रचनायें कही जा सकती हैं। 'इन्कलाब' तो काबिल–ए–तारीफ ही है। बहुत सावधानी से राय साहब मानव में ईश्वर का दर्शन करते हैं और यह इच्छा रखते हुए उनके हृदय में जीने की अजीब तमन्ना है। राय साहब का अभिमत है कि जीवन सतत चलने वाली प्रक्रिया है और इसे अनावश्यक व्यतिक्रमित करना ही अपराध है।

गांधी और लालबहादुर शास्त्री को दी गई श्रद्धांजलियों के बाद कवि के विश्व क्रांति के उद्‌घोष का स्वर विस्मयकारी है और चाहता हूं कि लौटकर विचार करूं पर फिर मेरा कवि मुझे डांटता

है और कहता है–क्रांति का निहितार्थ मात्र रक्तक्रांति ही नहीं यह परिवर्तन का सूचक भी है। **पढ़ना होगा तुम्हें, स्वयं को जानना होगा, समझना होगा, शब्द ही समस्या है और निःशब्द हो जाना समाधान। याद रखना कवि! शब्दानन्द को समझने के लिए शब्द के भीतर उतरना होगा।** जो दुष्कर है सिर्फ तुम्हारे लिए! यत्र–तत्र उभरे बिम्ब प्रतीक कवि के काव्य शक्ति की प्रौढ़ता का आख्यान करते हैं। कवि अलंकार साधना से सर्वथा अलग है पर आनुप्रासिक संस्पर्श शब्दानन्द के आनन्द की साधना का अधिष्ठान कहने के लिए विवश करते हैं। छन्दबद्धता कवि की विशेषता है। उसका उर्दू पर अधिकार है, पर माटी की भाषा (भोजपुरी) के प्रति लगाव भी कम नहीं है। इसलिए वह नचता, रस्ता लिखकर रास्ता लेता है। कवि का काव्य वैभव और कॉज्मस मेरे बौने कद पर भारी पड़ रहा है। कुछ और कहना चाह रहा हूं पर प्रणाम का भी अपना एक कल्चर है। सांस्कृतिक सद्‌भाव के सम्यक् पुंज पुरूष श्रद्धेय शब्दानन्द जी के अपौरूषेय व्यक्तित्व को आत्म प्रणाम करते हुए आनत हूं, इस मुद्रा में कि–

"मानव जीवन अनमोल अरे! सौ बार नहीं मिलता"

डॉ0 जनार्दन राय
एम.ए. (द्वय), बी. एड.
पी–एच.डी., डी.लिट्.
नरहीं, बलिया, उ0प्र0

(नोट– यहां पर परम संत हुजूर शब्दानन्द जी महाराज द्वारा रचित 'युग–बोध' नामक पुस्तक की जो प्रस्तावना उद्‌धृत की गई है उसका एक खास उद्देश्य है। निःसंदेह हुजूर शब्दानन्द जी महाराज मानव चोले में रहते हुए भी मानव नहीं थे, अपितु साक्षात् परमतत्व ही थे, हैं और सदा रहेंगे। लेकिन इस चोले में रहते हुए उनके बहु–अयामी होने के बारे में उनके श्रद्धालुओं को कम ही पता है। उनमें से एक पहलू 'कवि' का पता ऊपर दर्शाया गया है। वे 'आवाज' उपनाम या तख्ल्लुस से जाने जाते थे। इसके अतिरिक्त वे एक अच्छे चित्रकार भी थे। –प्रकाशक)

हुजूर शब्दानन्द महाराज जी की लेखनी से

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज द्वारा रचित पुस्तक युग–संदेश के प्राक्कथन से उधृत–

विश्व, युग और मानवता की वर्तमान स्थिति को आज यदि हम गहराई में उतर कर देखें और गौर से विचार करें, तो हम पाएंगे कि ये अपने गंतव्य के सही निर्धारित मार्ग से भटक गए हैं और अपनी मंजिल से इतनी दूर आ पड़े हैं जहां केवल संकट, त्रासदी और घोर निराशा के सिवा और कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं। वस्तुतः विश्व–मानव की स्थिति आज अपने जड़ मूल से कटे हुए वृक्ष और अपनी पटरियों से उतरे हुए दुर्घटनाग्रस्त रेल गाड़ी के जैसी हो गई है जिसे तत्काल अविलम्ब पर्याप्त रक्षा और सहायता की नितान्त अनिवार्य आवश्यकता है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकृति द्वारा निर्धारित सुनिश्चित विधि–विधान के अनुकूल ही गतिमान रहता है। प्रकृति के निर्धारित विधि–विधान से तनिक भी विचलित, अथवा पथ–भष्ट होते ही समस्त ब्रह्माण्ड–व्यवस्था में भीषण दुर्धटनाओं का घटित होना अनिवार्य है, जिसका सहज परिणाम विश्व में घोर संकट, तबाही और त्रासदी का होना है, जिसे टाला नहीं जा सकता।

जीवन और विज्ञान का अन्योन्याश्रय संबंध, शरीर और आत्मा जैसा ही घनिष्ट है। विश्व–मानव के जीवन में स्थायी सुख–शांति व्यवस्था के लिये व्यावहारिक विज्ञान की अपरिहार्य अपेक्षा है, जिसकी पूर्ति के निमित्त प्रकृति की ओर से ही समय–समय पर युग–पुरूष का अवतार होता रहता है। युग–पुरूष अथवा जगत–गुरू द्वारा निर्दिष्ट विधि–निषेध ही 'युग–धर्म' होता है जो देश और काल के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

आज विश्व के वैज्ञानिक पृथ्वी के तापमान में आई बढ़ोतरी (Global Warming) के प्रश्न को ले कर घोर चिंता और सोच में डूबे हुए हैं। वैज्ञानिकों के विचार में पृथ्वी के तापमान में आई बढ़ोतरी

मानवीय गति–विधियों के प्रभाव के कारण हो सकती है। कुछ वैज्ञानिकों की राय में, इस तरह की अनियमितताएं पृथ्वी के ही सर्वनाश के निकट होने के लक्षण हो सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र ने इस विषय को अत्यधिक गम्भीर बताते हुए विचार व्यक्त किया है कि इस समस्या से निपटना आसान नहीं है और इसकी उपेक्षा करना भी बहुत ही खतरनाक होगा।

अनेक पर्यावरण–विशेषज्ञों का मत है कि यदि हम ग्लोबल वार्मिंग के खतरों के प्रति सचेत और सक्रिय न हुए तो निकट भविष्य में समुद्री भूचाल, सुनामी बाढ़, तूफान, अकाल और महामारी के संकट बढ़ सकते हैं, जिसके कारण पृथ्वी का सर्वनाश नजदीक हो सकता है।

विज्ञान–जगत और विचारकों द्वारा व्यक्त उपर्युक्त चिंताएं और चर्चाएं मुझे अनायास ही युग–पुरूष परम दयाल फकीर बाबा द्वारा आज से 58 वर्ष पूर्व दी गई चेतावनियों और हितोपदेश की याद दिलाती हैं, जिन्होंने विश्व को बारम्बार बुलन्द आवाज में भविष्यवाणी की थी कि विश्व पर घोर संकट और तबाही आने वाली हैं जिन्हें कोई शक्ति रोक नहीं सकती, क्योंकि ये विश्व–मानव के स्वार्जित प्रारब्ध कर्म फल हैं।

परम दयाल फकीर बाबा ने इस आसन्न महा संकट का वैज्ञानिक कारण बताते हुए स्पष्ट किया था कि अधुनातन विज्ञान द्वारा अब तक खोजे गए विभिन्न प्रकार के पर्यावरण प्रदूषणों में सर्वाधिक हानिकारक और घातक प्रदूषण मानव–मन में उपजे हुए विचार–प्रदूषण होते हैं जो अंतरिक्ष में संचित होते रहते हैं और समय पा कर पृथ्वी पर भूचाल, तूफान, बाढ़, अकाल और महामारियों के रूप में बरस पड़ते हैं।

परम दयाल फकीर बाबा ने इस घोर संकट, तबाही और त्रासदी से बचाव का एक मात्र सहज उपाय वेद–मार्ग, वेद मंत्रः 'शिव संकल्पमस्तु' बताया था।

परम दयाल फकीर बाबा ने अपने सरल और दयार्द शब्दों में हितोपदेश दियाः

'हे इन्सान! संभल जाओ, अभी समय है। न जाने कब किस समय मौत का डंका बज जाए! क़ब्ल इसके कि मौत का ख़ौफनाक डंका बज उठे, तू अभी जाग उठ। प्रकृति मानव को किये गए अपराधों के प्रायश्चित का अवसर देती है। तू प्रायश्चित कर। अपने दिलों से सभी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और शत्रुता के भाव निकाल फेंक, और दूसरों के प्रति अपने हृदय में वैसी ही विचार–भाव रख, जैसे तू दूसरों से अपने लिए आशा रखता है। यानी कि तू आज और अभी से मानव बन!

इन्सान बन! मुकम्मिल इन्सान बन!

प्रायश्चित में प्रमाद कैसा! जब जागे तभी सबेरा।

'शिव संकल्पमस्तु'

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज द्वारा रचित 'अजायब पुरूष' नामक पुस्तक की भूमिका से उद्धृत–

मनु की सन्तान मानव जब से इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ है, तभी से वह निरपेक्ष सत्य (Absokute Truth) की खोज में निरंतर संलग्न रहा है। विश्व के सारे ज्ञान–विज्ञान, विद्या–बुद्धि, शोध–अनुसंधान जिस की खोज में अनवरत संलग्न रहे हैं, वह निरपेक्ष सत्य आखिर क्या है? यह दृश्य अदृश्य अनन्त ब्रह्माण्ड क्या है? इसका रचने वाला कौन है? वह कहां रहता है? हम कौन हैं? कहां से आए हैं? मर कर कहां जाते हैं? उस रचैता से हमारा क्या नाता है? आदि–आदि मूल भूत प्रश्नों का यथार्थ संतोषजनक उत्तर क्या है? आखिर इस घोर अज्ञान–अंधकार में हम कब तक यूं ही भटकते रहेंगे?

मानव ने इस खोज के निमित्त अपनी त्रिगुणात्मक वृत्ति और काल के अनुसार, तीन मार्गों का अनुसरण किया :

1. ध्यान मार्ग (Reflective Way)
2. विश्लेषणात्मक मार्ग (Analytical Way)
3. अंतःप्रेरणात्मक मार्ग (Intuitive Way)

किन्तु उपर्युक्त तीनों मार्गों का अनुसरण कर, मानव अभीष्ट सत्य की खोज में सफल नहीं हुआ। इसी तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास द्वारा अपने 'मानस रामायण' में अपने ढंग से वर्णन करते हुए लिखते हैं:

'ध्यान प्रथम युग मख युग दूजे, द्वापर परितोषितप्रभु पूजे।
कलि केवल एक नाम अधारा, श्रुति स्मृति संतमत सारा।।'

अर्थात् सतयुग में ध्यान मार्ग से, त्रेता में यज्ञ–हवन मार्ग से, द्वापर में इष्ट देव की पूजा द्वारा तथा कलियुग में केवल मात्र 'नाम' का सहारा लेकर सत्य की खोज की गई। वेद, पुराण तथा संतमत का सार यही है।

परम संत स्वामी शिव दयाल जी महाराज (आगरा वाले) इसी तथ्य को अपने शब्दों में फरमाते हैं:

सत युग त्रेता द्वापर बीता। काहु न जानी शब्द की रीता।।
कलियुग में स्वामी दया विचारी। प्रकट करके शब्द पुकारी।।'

अर्थात् सत युग, त्रेता और द्वापर युग व्यतीत हो गए, किंतु 'शब्द' का ज्ञान किसी को भी नहीं हुआ। अंततोगत्वा कलियुग में दयाल स्वामी को मानव मात्र की दयनीय दशा पर दया आई और स्वयं संत सतगुरू रूप में अवतरित हो कर 'शब्द' ('नाम') तत्व के यथार्थ रूप का भेद प्रकट किया।

गोस्वामी तुलसीदास जी 'मानस रामायण' में लिखते हैं:

'चहुं जुग चहुं स्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।।'

अब प्रश्न उठता है कि 'नाम' ('शब्द) क्या है? इसका महत्व क्या है? गोस्वामी तुलसी दास जी इस अहम प्रश्न का उत्तर स्वयं अपने 'मानस रामायण' में इस प्रकार देते हैं:

'अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा।।
मोरे मत बड़ नाम दुहूं ते।
किय जेहि जुग निज बस निज बूते।।
उभय अगम जुग सुगम नाम तें।

कहउँ नाम बढ़ ब्रह्म राम तें।।
निरगुन तें इहि भांति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज विचार अनुसार।।
राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी।।
भंजेउ राम आपु भव चापू।
भव भय भंजन नाम प्रतापू।।
दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन।
जन मन अमित नाम किय पावन।।
निसिचर निकल दले रघुनंदन।
नाम सकल कलि कलुष निकंदन।।
सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन नाथ।।
राम भालु कपि कटक बटोरा।
सेतु हेतु स्रम कीन्ह न थोरा।
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं।
करहु बिचार सुजन मन माहीं।।
ब्रह्म राम तें नाम बड़, वर दायक वर दानि।
कहउँ कहां लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुन गाई।'

यहां विचार करने की बात यह है कि भगवान श्रीराम के अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसी दास ने श्री राम की महिमा को 'नाम' की तुलना में हीन वामन ठहराया। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि संत कभी झूठ नहीं कहता। संत सदा सत्य कहने को विवश है। और गोस्वामी तुलसी दास संत गति को प्राप्त हो चुके थे। संत कबीर की वाणी हैः

'सांच कहूं तो कोई न माने झूठ कहा नहिं जाई।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया, जिन यह जगत चलाई।।'

प्रश्न है, संतों द्वारा व्यक्त किया गया 'नाम' 'शब्द' क्या है?

'नाम' और 'शब्द' पर्यायवाची हैं जो पराअध्यात्म की चौथी अवस्था– निरगुण, निराकार, अविनाशी, साक्षी अवस्था के प्रबोधक हैं। यही संत मत का सार है, जो तीन युग व्यतीत हो जाने के बाद, कलियुग में संत सतगुरू अवतरित होकर प्रगट करते हैं।

'कृत त्रेता द्वापर समय, पूजा मख अरू जोग।
जो गति होइ सो कलि विषै, नाम तें पावहिं लोग।।
कलि युग सम युग आन नहिं, जो नर के विश्वास।
गाइ नाम गुन गन विमल, भव तर बिनहि प्रयास।।'

परम संत सतगुरू स्वामी शिव दयाल जी महाराज की वाणी हैः

'सतयुग त्रेता द्वापर बीता। काहु न जानी शब्द की रीता।।
कलि युग में स्वामी दया विचारी। प्रगट कर के शब्द पुकारी।।'

–'सार वचन छंद'

43,20,000 वर्षों का 'कल्प' (महायुग) साधक को कुण्डलिनी, हठयोग, आनन्दयोग आदि अनेकानेक योगों की साधनाएं करते हुए बीत गए, अंततः 'सहज योग' की साधना, समय के संत सतगुरू की देख रेख में करते हुए, सहज समाधि' अवस्था की सिद्धि होती है, जो जीव की 'महा काल यात्रा' की मंजिल (गंतव्य) है, जो 'इष्ट पद' है। तभी मानव को काल, कर्म, धर्म, 'महा मोह तम पुंज' आवागमन से सदा सर्वदा के लिये निजात (मुक्ति) प्राप्त हो जाती है और सुरत (विशुद्ध आत्मा) अजर, अमर, अविनाशी 'परम विश्राम अवस्था' को प्राप्त होती है। गोस्वामी तुलसी दास जी के शब्दों मेंः

'बंदउ गुरू पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुज, जासु बचन रवि कर निकर।।'

अर्थात् मैं सतगुरू के कमल–चरणों की वंदना करता हूं, जो कृपा के सागर तथा मनुष्य रूप में परमेश्वर हैं, जिनके वचन घनघोर अज्ञान–अंधकार को नष्ट करने वाले प्रकाश–पुंज हैं।

सतगुरू के वचन ही 'नाम' है जो सगुण, निर्गुण ब्रह्म से भी श्रेष्ठ है, जो भव–सागर के सभी प्रपंचों से मुक्ति दिलाता है।

एक बार किसी राजपुरूष ने भारत के प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से प्रश्न किया–'आप की समस्याएं क्या हैं?'

पंडित नेहरू ने अपने हृदय की पीड़ा अत्यंत मार्मिक शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा–'मेरी समस्याएं उतनी ही हैं, जितनी कि भारतवर्ष की जन संख्या है।' बात भी सच थी। मानव–जीवन ही अपने आप में एक जटिलतम समस्या है, जिसका एक मुश्त समाधान है 'नाम' और केवल 'नाम'। संत सतगुरू की वाणी है–

'तीन ताप से जीव दुखी है, निबल अबल अज्ञानी।
संत का काम दया का भाई 'नाम' दान दे दानी।'

तीन ताप हैं शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक कष्ट चिंताएं जिनकी एक मात्र औषधि है 'नाम'। मीरा बाई का शब्द हैः–

'पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दई मेरे सतगुरू, कृपा कर अपनायो।
जनम जनम की पूंजी पाई, जगत में सब ही खोवायो।
खरचे से घटे नहिं चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो।
मीरा के प्रभु गुरू अविनासी, हरष हरष जस गायो।'

'नाम' क्या है? 'नाम' है शब्द–विज्ञान (Sonology), जो विज्ञान की अंतिम उच्चतम अवस्था है, जो संत मत की विशेष देन है, जो मानव को मानव के पूर्ण स्वरूप का ज्ञान करा कर उसे 'अभय पद', अविनाशी अवस्था प्रदान करता है। प्रस्तुत ग्रंथ 'पुरूष अजायब' इसी 'शब्द–विज्ञान की व्याख्या द्वारा, मानव को 'पूर्ण पुरूष' बनाने का प्रयास है। आशा है, सुधी पाठक पूर्ण लाभ उठा कर, लेखक के प्रयास को सफलता प्रदान करेंगे।

आत्म–निवेदन (यथार्थ बोध नामक पुस्तक) से उद्धृत–

जीवन में जब होश जागा, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। मैंने पाया कि मैं एक अदद बुरी तरह बिगड़ चुका पन्द्रह साल का तरूण हूं, जिसके पास चरित्र नाम की कोई चीज नहीं बच रही थी। तेरह वर्ष की कच्ची उर्म में ही पिता श्री की जीवनदायी छाया सिर से उठ चुकी थी। चन्द बिगड़े हुए छात्रों की मित्र–मंडली और

कुसंस्कृत गुलाम समाज और भ्रष्ट शिक्षा के दुष्प्रभावों के कारण चरित्र क्षत–विक्षित् हो चुका था। सिनेमा देखने की बुरी लत पड़ गई थी। इन्हीं कारणों से दिल का उत्साह और दिमाग की मेधा बुरी तरह कुंठित हो चुकी थी।

एक दिन, जब मैं मैट्रिक फाइनल की परीक्षा की तैयारी में व्यस्त था, एक मित्र ने आ कर कहा कि आज पिक्चर देखनी है जिसने शहर में धूम मचा रखी है; जिसका आज अतिम दिन है। किन्तु मेरी जेब खाली थी। हाथ–पांव मारा मगर पैसों का कोई जुगाड़ न हो सका। संस्कार–भ्रष्ट मन क्या कुछ नहीं कर बैठता! एक छात्र की पुस्तक चुराई और रंगे हाथ पकड़ा गया। मामला प्रिंसिपल तक पहुंच गया और स्कूल से निष्कासित कर दिया गया। एक वर्ष बर्बाद हो गया। स्कूल, घर, बाहर कहीं भी मुंह दिखाने लायक नहीं रहा।

शर्मनाक घटना ने दिल–दिमाग पर गहरा असर किया। कुदरत जो भी करती है, मसलहत से खाली नहीं होता। कोई न कोई भलाई उसमें जरूर छिपी होती है। निराशा की बदली में आशा की बिजली कौंधीः

'शायद खिजां से शक्ल अयां हो बहार की।
कुछ मसलहत इसी में है परवरदिगार की।।'

मन के अंदर सुप्त अवस्था में दबे, माता–पिता के संस्कार उभर खड़े हुए। दाता दयाल की याद जोरों से आने लगी, जो सन् 1939 में ही समाधि ले चुके थे। उनकी कुछ चुनिन्दा पुस्तके पढ़ीं। पिता श्री दाता दयाल की पुस्तकों की समृद्ध लाइब्रेरी घर में बना गए थे। दाता की पुस्तकों ने जीवन उभार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मन में नये सिरे से जीवन–सुधार के प्रबल विचार हिलोंरे लेने लगे। मन ने ठान लिया कि अब परिवार पर बोझ बन कर नहीं रहूंगा। मैट्रिक की परीक्षा प्राईवेट करने की ठान ली। परीक्षा–फार्म भर कर बोर्ड–दफ़्तर में दाखिल कर दिया और अध्ययन में जुट गया।

मैं दर्जा एक से नौ तक कभी फेल नहीं हुआ। सदा पास होता गया। इसका रहस्य यह था कि पिता जी के साथ जब भी हम

दाता दयाल के दर्शन करने जाते, तो एक फूलों की माला और पांच रूपये से उनको मत्था टेकते और दाता आशीर्वाद देते–'जा तू पास हो जाएगा' और हम परीक्षा में पास हो जाते।

मैट्रिक की फाइनल परीक्षा सिर पर थी और दाता दयाल जी चोला छोड़ चुके थे। मैंने दाता दयाल की फोटो ली और उन्हें ही दिल से इष्ट देव मानकर, सुबह–शाम उनसे परीक्षा में पास होने के आशीर्वाद की विनती करने लगा।

फरवरी 1940 में मेरे जीवन की एक महान घटना घटी। रात में देर तक पढ़ने के कारण मैं गहरी नींद में सो गया। प्रातः चार बजे मेरी माता श्री ने मुझे जगाया और बोली, "बेटे, परम दयाल जी महाराज अलाहाबाद में आए हुए हैं, तू मुझे उनका दर्शन करा दे।"

मैंने कहा, "मां, मुझे नहीं मालूम कि परम दयाल जी महाराज कहां आए हुए हैं।"

माता ने कहा, "मैं कहती हूं न, कि परम दयाल जी महाराज अलाहाबाद में आए हुए हैं। तू उठ और मुझे उनका दर्शन करा दे।" मैं मजबूर हो कर रजाई से निकला, कोट कन टोप पहना, साइकिल निकाली और रेलवे स्टेशन गया। वहां प्लेटफार्म, वेटिंगरूप में देखा, मगर परम दयाल जी महाराज नहीं मिले। निराश हो कर मैं घर लौट पड़ा। रास्ते में मुझे 'जैन धर्मशाला' का बोर्ड दिखाई दिया मैंने सोचा धर्मशाले में भी देख लूं। शायद धर्मशाला में हों। अन्दर गया तो धर्मशाला के प्रबंधक ने पूछा, "बेटे, तू किसे तलाश कर रहा है?" मैंने पूछा, "श्रीमान् जी! क्या कोई पंजाब के महात्मा यहां ठहरे हुए हैं?" प्रबंधक महोदय ने कहा, "एक दाढ़ी वाले महात्मा ऊपर के कमरे में ठहरे हुए हैं। तुम जा कर देख लो।"

मैं ऊपर गया। सामने के कमरे का दरवाजा आधा खुला था। मैंने बाहर से ही झांक कर देखा तो परम दयाल जी महाराज साक्षात् विराजमान थे। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मैं कमरे में न जा कर, उलटा घर पहुंचा और माता श्री को साथ लेकर धर्मशाले पहुंचा और कमरे में दाखिल हुआ।

परम दयाल जी महाराज गहरी समाधि में थे। माता श्री ने उनको मत्था टेका। महाराज की समाधि टूटी और बोले, कौन है? माता श्री बोलीं, "हुजूर, मैं दयाल की माई।"

महाराज जी ने माता श्री को मत्था टेका और बोले, "दयाल की माई! तू यहां कैसे?"

माता जी बोलीं, "हुजूर, मेरा तो यहीं घर है। आप धर्मशाला में क्यों ठहरे हैं? घर चलिये।"

परम दयाल जी महाराज बोले, "माई मेरे साथ और भी संत्संगी हैं। तुझे तकलीफ होगी।"

माता जी बोलीं, "महाराज, मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। दाता दयाल जी जब भी अलाहाबाद आते थे तो मेरे ही यहां ठहरते और सत्संग देते थे।"

परम दयाल जी बोले, "अच्छा माई मैं तेरे घर चलूंगा। यह लड़का तेरे साथ कौन है?"

माता जी बोलीं, "हुजूर यह मेरा बेटा है। मैट्रिक परीक्षा की तैयारी में लगा है।"

परम दयाल जी महाराज ने पूछा, "बेटे, तुझे कोई प्राब्लम तो नहीं है?"

मैं रो पड़ा! और बोला, "हुजूर, मैं मैथमेटिक में बहुत कमजोर हूं! फेल हो जाऊँगा।"

परम दयाल जी महाराज बोले, "नहीं तू फेल नहीं होगा। मेरे पास इधर आ जा।"

महाराज जी ने मेरे भ्रूमध्य में अपनी उँगली रखते हुए कहा, "इस जगह तू मेरे रूप का ध्यान किया कर और मन से 'राधास्वामी' नाम का सुमिरन किया कर। 15 मिनट सुबह, 15 मिनट शाम को। इससे ज्यादा नहीं। जा तू पास हो जाएगा। अपना दाहिना हाथ मेरे हाथ में देते हुए कहा, यह ले मेरा हाथ पकड़ ले। छोड़ना नहीं।" और पूछा "कोई सवारी लाया है?"

मैं बोला, "जी हुजूर, नीचे बग्गी खड़ी है। आप चलें!"

परम दयाल जी महाराज तीन दिन दयाल की माई के घर ठहरे और सत्संग फरमाते रहे। अलाहाबाद के सत्संगी परम दयाल जी महाराज के सत्संग से बाग–बाग हो गये।

मैं मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा।

विगत तीन महीनों के प्रत्यक्ष अनुभव से मुझे दृढ़ परतीति हो गई कि सतगुरू की ज़ात पाक एक है, अनादि–अनन्त है, अजर–अमर अविनाशी है। जगत की मांग के अनुसार रूप बदलता रहता है। गुरू न कहीं जाता है, न आता है। इस अटल सत्य का प्रमाण मुझे सतगुरू के शब्द में ही मिल गया।

'गुरू को तुम मानुष मत जानो।
वे हैं सत्त पुरूष की जान।।
दया मेहर से बचन सुनावें।
वे हैं पूरन पुरूष अनाम।।
धरी देह मानुष की गुरूने।
ज्यों त्यों तेरा करें कल्याण।।
सेवा कर पूजा कर उनकी।
उन्हीं को गुरू नानक जान।।
वही कबीर वही सत नामा।
सब संतन को वही पिछान।।
तेरा काज उन्हीं से होगा।
मत भटके तू तज अभिमान।।
चूके मत अवसर अब पाया।
बढ़ कर इन से कोई न मिलान।।
जो अब की गुरू से तू चूका।
तो भरमेगा चारों खान।।
फिर ऐसे गुरू मिलें न कबही।
मान मान तू अब ही मान।।

'सार वचन छंद,' भाग प्रथम, शब्द बारहवां
शब्दानन्द

परम संत हुजूर मानव दयाल महाराज जी के विचार हुजूर शब्दानन्द जी द्वारा रचित पुस्तक 'यथार्थ बोध' के संबंध में

शब्दानन्द द्वारा रचित पुस्तक 'यथार्थ बोध' का अवलोकन कर मुझे हार्दिक खुशी और संतोष हुआ है। शब्दानन्द जी प्रथम बार दिसम्बर 1981 में मुझसे वाराणसी में क्लार्क होटल में मिले थे, जब मैं एक अमेरिकी शिष्ट मंडल के साथ भारत–यात्रा पर था। प्रथम दृष्टि में ही मैंने इन्हें 'सन्तमत और मानवता' मिशन के कार्य के लिए चुन लिया था। अपने अध्यापन कार्य से निव्त होकर वे, मेरे कहने पर, सहर्ष मेरे पास होशियारपुर (पंजाब) आ गए। तभी से वे मेरे साथ रहकर देश–विदेश में मेरे व्यक्तिगत आध्यात्मिक सचिव एवं आचार्य पद के कार्य को पूर्ण निष्ठा और कुशलतापूर्वक सम्पन्न करते रहे हैं।

शब्दानन्द जी ने सद्गुरू–उपदेश और संतमत की शिक्षा के सूक्ष्मतम् रहस्यों को बारीकी से समझा है जिन्हें इस पुस्तक में उन्होंने बड़े सरल सुबोध रूप में बड़ी उत्तमता से व्यक्त करने का सराहनीय कार्य किया है। मैं उन्हें हृदय से बधाई देता हूं।

इस पुस्तक के अवलोकन से जिज्ञासु और सत्संगी जन के मन में स्वाभाविक रूप से उठने वाले नाना भ्रम,

संशय, शंकाओं और संदेहों का पूर्णतः समाधान होगा और सच्चाई को समझने में सहायता मिलेगी।

मैं शब्दानन्द जी को सच्चे दिल से आशीर्वाद देता हूं कि उनका यह प्रयास जन–कल्याण के हित में पूर्ण रूप से सार्थक और उपयोगी होगा, साथ ही मैं शब्दानन्द जी को आदेश देता हूं कि वे पूर्ण रूप से मुक्त और स्वतंत्र रहकर 'संत मत और मानवता' की सच्ची शिक्षा का प्रसार–विस्तार देश–विदेश में सच्चाई और निःस्वार्थ भाव से करते रहेंगे, जिससे न केवल जिज्ञासु सत्संगी जन का, बल्कि स्वयं शब्दानन्द का भी, सच्चा कल्याण होगा।

मानव दयाल (हस्ताक्षर हिन्दी में)

आई. सी. शर्मा (हस्ताक्षर अग्रेंजी में)

हजूरी कोठी,
सेक्टर 21
फरीदाबाद।
दिनांक 26 जून, 1999

(नोट– इस पुस्तक का विधिवत प्रकाशन यद्यपि दिसंबर 2009 में हुआ तथापि इस पुस्तक को हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने एक दशक पहले ही लिख कर हुजूर मानव दयाल जी महाराज को भेंट कर दी थी। हुजूर मानव दयाल जी महाराज इस पुस्तक को अपने जीवन काल मे ही छपवाना चाहते थे लेकिन हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने अपने गुरू के सामने हमेशा अपने को नींवा ही रखा इसलिए यह पुस्तक उस समय प्रकाशित नहीं हुई।)

–प्रकाशक

श्री पवन मल्लहन, होशियारपुर के विचार परम संत हुजूर शब्दानन्द जी द्वारा रचित पुस्तकों के आधार पर

सतपुरूष और जीव का नाता पिता–पुत्र का नाता है। जिस प्रकार पुत्र पिता की आत्मा का ही अंश (आत्मज) होता है, ठीक उसी प्रकार सारे जीव परम पुरूष या सतपुरूष के अंश (पुत्र) हैं। और इसी प्रकार शिष्य भी अपने गुरू के मानसिक पुत्र होते हैं। जैसे एक पिता अपनी संतान के कल्याण के लिये धन–सम्पत्ति छोड़ कर जाता है और अन्य कुछ उपदेश और पत्र आदि बड़े प्यार से लिख कर छोड़ जाते हैं (उदाहरण के लिए पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुत्री प्रिय दर्शिनी (इंदिरा गांधी) के लिए पत्रों के रूप में एक पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इंडिया' या 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' लिख कर गए थे) उसी प्रकार एक गुरू भी अपने पुत्र रूपी चेलों के लिए उनके वर्तमान एवं भविष्य के कल्याण के लिए प्रेम से हजारों शब्द और पोथियां लिख जाता है। फर्क सिर्फ इतना होता है कि जो ज्ञान गुरू अपने चेलों के लिए लिख कर जाता है उससे न केवल उसके शिष्य फैजयाब होते हैं बल्कि अन्य जिज्ञासु भी उनसे लाभान्वित होते हैं। चूंकि गुरू का प्रत्येक कार्य स्वार्थ–रहित होता है अतः उसके द्वारा पुस्तकों में दिया गया ज्ञान भी कल्याणकारी होता है। बस! यही प्रेरणा मुझे इस लेख को लिखने के लिए उत्साहित कर रही है।

परम संत हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के विषय में तो इस पुस्तक में आप अन्य लेखों से जानकारी प्राप्त कर ही लेंगे, लेकिन उनके द्वारा रचित पुस्तकों के बारे में आपको तब तक पता नहीं चलेगा जब तक कि आप स्वयं इन महान ग्रंथों का अवलोकन नहीं कर लेते। यद्यपि किसी भी लेखक का पूरा परिचय उसकी पुस्तकों को पढ़ लेने मात्र से नहीं हो पाता, तथापि एक झलक या प्रकाश की एक रश्मि का अनुमान तो लग ही जाता है। और लेखक यदि

संत–महात्मा हो तो जब तक उसके सानिध्य में कोई निष्काम भाव से समर्पित होकर न रहे, उसके द्वारा दिए गए सूत्रों की समझ आनी कठिन है। साधारण–बुद्धि का व्यक्ति तो उन सूत्रों या शब्दों का अर्थ 'डिक्शनरी' या 'शब्द–कोष' में ही ढूंढता रहेगा और इससे अर्थ का अनर्थ होने की पूरी–पूरी सम्भावना भी बनी रहेगी।

मुझे बचपन से ही या यों कहो जन्म के पूर्व से ही संतों की संगत में बैठने और सेवा करने का सौभाग्य मिला है, अतः मुझे संतों की भाषा कुछ–कुछ समझ में आती है। उसी कुछ–कुछ समझ के आधार पर मैं यहां पर हुजूर शब्दानन्द जी महाराज द्वारा रचित निम्न पांच पुस्तकों के कुछ अंश प्रस्तुत करके आपके अंदर सत्य को खोजने की भूख जाग्रत करने का प्रयास करना चाहता हूं। वैसे तो सत्य को खोजने की जिज्ञासा हर मनुष्य के अन्दर जन्म से ही स्वाभाविक रूप से होती है और कभी–कभी तो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में सामने भी आ जाती है, लेकिन हम उस जिज्ञासा को शांत करने के बजाय दबा देते है, उसका गला ही घोंट देते हैं। इसलिए वह जिज्ञासा अधूरी ही रह जाती है। इसीलिए हमें बार–बार जन्म लेना पड़ता है। कारण– जब तक कोई भी इच्छा पूरी तरह से संतुष्ट नहीं हो जाती तब तक बार–बार जन्म लेना ही पड़ता है; यह सृष्टि का अटल नियम है। यह नियम सांसारिक इच्छा और आध्यात्मिक इच्छा दोनों पर समान रूप से लागू होता है।

1. युग संदेश
2. अजायब पुरूष
3. यथार्थ बोध
4. हिदायत नामा
5. युग बोध

युग–संदेश

यह सत्य है कि संत या फकीर जगत–कल्याण के लिये अपनी त्रिकालदर्शी दृष्टि से, आने वाली घटनाओं के बारे में समय से पूर्व ही भविष्यवाणी करके, दुनिया को आगाह कर देते हैं, लेकिन

संत–फकीर की वाणी को कौन सुनता है? हम दुनिया वाले उनकी कल्याणकारी वाणी को 'नक्कारखाने में तूती की आवाज' की तरह अनसुनी कर देते हैं। बीती शताब्दी के बीच मानवता के संत युग–पुरूष परम दयाल बाबा फकीर ने विश्व को चेतावनी दी थी कि विचार–प्रदूषण के परिणाम स्वरूप विश्व पर घोर संकट और बर्बादी आ रही है जिसे कोई शक्ति टाल नहीं सकती और जिससे बचाव की एक ही सूरत होगी 'मानवता' का आचरण। लेकिन हम दुनिया वालों ने फकीर बाबा की चेतावनी को अनसुनी कर दिया, जिसका परिणाम दुनिया आज विश्व–व्यापी आतंकवाद, युद्ध और दैवी प्रकोप के रूप में भुगत रही है।

अदने पशु–पक्षियों तक में भावी संकट के पूर्वाभास की अद्‌भुत शक्ति प्राकृतिक रूप में होती है, जिसके सहारे वे अपनी सुरक्षा स्वयं कर लेते हैं, लेकिन धरती पर आदम जात ही एक ऐसा अल्हड अलमस्त प्राणी है जो संसार को फूलों की सेज समझ कर, इसके कांटों से बिल्कुल बेसुध, सपनों की अपनी रंगीन दुनिया में खोया, मनमानी सोचता–करता रहता है, और खुद को संकटों के जाल में बुरी तरह उलझा लेता है।

तो क्या सृष्टि का सिर मौर, अशरफुल मखलूकात, हजरते इन्सान ही एक मात्र ऐसा प्राणी है जो पूर्वाभास की शक्ति से वंचित रह गया? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तब फिर कोई बताए भी तो कि आखिर क्या है वह युग–संदेश जो नव–युग अपनी रहस्यमयी अदृश्य झोली में मानव–जगत के लिये लेकर आया है? इस पुस्तक में इसका सटीक और संतोष जनक उत्तर हुजूर शब्दानन्द जी द्वारा वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर दिया गया है। जैसे–

कल तक तुम गलतियों पर गलतियां करते रहते थे और प्रकृति माता तुम्हारी गलतियां माफ करती रहती थी, लेकिन अब ऐसा नहीं होगा। विज्ञान–युग में इन्सान की प्रथम गलती अंतिम गलती होगी, जो अक्षम्य होगी, जिसकी सजा त्वरित मिलेगी, जिसे अकेले तुम्हें ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व और ब्रह्माण्ड को भी भुगतनी होगी।

आज के मानव को अविलम्ब 'विज्ञान–युग' की अपरिहार्य अपेक्षाओं के अनुरूप पूरी तरह ढल जाना होगा। आज से 80 वर्ष पूर्व युग–पुरूष दाता दयाल जी महाराज ने विश्व–मानव को चेतावनी दी थीः 'सम्पूर्ण रूप में मनुष्य बनो।' 'Be Human Entire, Whole and In Every Thing'.

विज्ञान न हिन्दू है, न ईसाई, न मुस्लिम वगैरह–वगैरह। विज्ञान विशुद्ध रूप से विज्ञान है और सिर्फ विज्ञान है। विज्ञान में जाति–पांति, फिरका, सम्प्रदाय, राष्ट्र–कौम, विश्वास–ईमान आदि कृत्रिम, भावनात्मक विभाजनों का कोई स्थान नहीं होता। विज्ञान शब्द–कोष में अवैज्ञानिक शब्दों का कहीं पता नहीं होता। अतः विज्ञान–युग में हमें शब्दों, विचारों, धारणाओं और मान्यताओं आदि का वैज्ञानिक पुनरीक्षण कर, नये सिरे से वैज्ञानिक परिभाषाऐं देनी होंगी, विशुद्ध सत्य की खोज करनी होगी, क्योंकि–

सत्य तक पहुंचना नहीं है सरल कार्य,
अनृत के पहरे अत्यन्त कड़े होते हैं।
पक्ष धर अन्तर में नर के प्रच्छन्न रूप,
दर्प के तुरंग साभिमान अड़े होते हैं।
होगी न अतिश्योक्ति यदि यह कहा जाए,
मनों में मनोरथ के दुर्ग खड़े होते हैं।
सत्य तो यह है कि निपेक्ष सत्य पर,
मोह के घनेरे आवरण पड़े होते हैं। –'युग–बोध'

संसार और आवागमन (जन्म–मरण) से मुक्ति की युक्ति का ही नाम अध्यात्म है। अध्यात्म (Supra-spiritualism) विज्ञान का चौथा आयाम (Fourth Dimension of Science) है। आधुनिक विज्ञान (Modern Science) ब्रह्म–विज्ञान (Cosmology) की शोध में संलग्न है जो विज्ञान का तीसरा आयाम (Third Dimension of Science) है। ब्रह्म–विज्ञान (Cosmology) प्रकाश–विज्ञान है और अध्यात्म (Supra-spiritualism) शब्द–विज्ञान (Science of Sound) है। अब वह दिन दूर नहीं जब आधुनिक विज्ञान ब्रह्म–विज्ञान का शोध–कार्य पूर्ण करके, शब्द–विज्ञान के कार्य में लग जाएगा।

वस्तुतः अध्यात्म–विज्ञान की प्रथम जरूरत है 'मानवता'। अध्यात्म को यदि आप एक भवन का गुम्बद माने, तो 'मानवता' को उस की बुनियाद समझें। यदि 'अध्यात्म' ऊपरी मंजिल है, तो 'मानवता' उसकी बुनियादी आधार शिला है। आधार–शिला के बगैर इमारत खड़ी नहीं हो सकती। उसी प्रकार 'मानवता' की आधार शिला के बगैर 'अध्यात्म' की इमारत का निर्माण असम्भव है। अध्यात्म की कक्षा में दाखिल होने के लिये पहली शर्त है 'मानवता', जो अपरिहार्य है।

पूर्ण मनुष्य वह है जो देह, मन और आत्मा के खेल खेलता हुआ स्वयं तथा औरों के कल्याण का हेतु बने।

अब आपके पास सोच–विचार का समय नहीं रहा। सर्वनाश की बिजलियां सिर पर कौंध रही हैं, न जाने कब फट पड़ें और विश्व को निगल जाएं। अब हम सब के लिए शिव–संकल्प करने और कदम उठाने की अंतिम घड़ी है। आइये 'अखण्ड मानव परिवार' (Cosmic Human Family) के हम सब भाई–बहन साथ में प्रयाण–गीत गाते हुए अपनी मंजिल–'सुख–शाति का प्रेममय संसार (Peaceful & Blissful World of Supreme love) की ओर बढ़ चलें।

मनीषी जगत से–मानवता के नाम पर एक अपील–

संसार के मनीषी! संसार को सम्हालो!
संसार जल रहा है, संसार को बचा लो।
हिंसा की उग्र लपटें चारों तरफ हैं भड़की।
बरबादियों के बादल में बिजलियां हैं कड़की।
जाने ये फट पड़े कब! जाने बरस पडें कब!
ताण्डव महा प्रलय का जाने विहंस पड़े कब।
इंसान सो गया है, शैतान जग उठा है।
भगवान! इस जगत का जाने भविष्य क्या है।
हे विश्व के मनीषी! मिल बैठ कर विचारो!
त्रुटियां जहां हैं जो हैं, उनको त्वरित सुधारो! .....

'पुरूष अजायब' से कुछ अंश

प्रत्येक शब्द के दो अर्थ होते हैं–(1) 'वाच्यार्थ' और (2) 'लक्ष्यार्थ'। जो बोलने या लिखने–पड़ने में आता है, उसे 'वाच्यार्थ' या 'वर्णात्मक' कहते हैं। और जो शब्द किसी लक्ष्य की ओर संकेत या इशारा करता है, उसे 'लक्ष्यार्थ' या 'ध्वन्यात्मक' कहते हैं।

अध्यात्म या रूहानियत की दुनिया में 'लक्ष्यार्थ' की महिमा और उपयोगिता विशेष है, क्योंकि 'लक्ष्यार्थ' ही इष्ट पद, आराध्य, माबूद है, जिसकी खोज और तलाश दुनियां को है। इष्ट पद, आराध्य, माबूद को पाने में –'ध्वनि' ही खोजी, मुतलाशी की सहायता करता है, न कि 'वर्ण'। अध्यात्म या रूहानियत का विषय 'ध्वनि विज्ञान' (शब्द विज्ञान) से संबंधित है, न कि 'वर्ण' या अलफाज से। अतः जिज्ञासु या मुतलाशी को, जब कोई 'शब्द–विज्ञान', 'सुल्तानुल अजकार' या (Sonology) का भेदी संत सतगुरू (मुर्शिद–ए–कामिल) मिल जाता है तो वह इस गुप्त भेद को भली भांति समझा देता है। अन्यथा, इस गुप्त परा आध्यात्मिक विषय को समझना यदि असम्भव नहीं, तो महा कठिन अवश्य है।

गोस्वामी तुलसी दास जी 'राम चरित मानस' में लिखते हैं–

'ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषित प्रभु पूजे।
कलि केवल एक नाम आधारा। स्रुति स्मृति संत मत सारा।
चहुं जुग चहुं स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।
कहं लगि कहउं नाम प्रभुताई। राम न सकहिं नाम गुन गाई।'

–तुलसी दास रामायण– बाल काण्ड

गोस्वामी तुलसी दास के उपर्युक्त कथन से यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि भव सागर से पार उतरने की एक मात्र युक्ति और साधन 'नाम' ही है, जिसकी प्रभुता स्वयं प्रभु राम भी कहने में असमर्थ हैं।

'शब्द' अस्तित्व में तो चारों युगों में रहता है, किन्तु प्रथम तीन युगों (सतयुग, त्रेता और द्वापर) में यह गुप्त (Potential) अवस्था में रहता है। कलियुग में संत अवतार लेकर, जगत–कल्याण के निमित्त 'शब्द–विज्ञान' को प्रकट करते हैं।

'पुरूष अजायब'

संत सतगुरू की विशेष कृपा दृष्टि से, कोई गुरूमुख, जब 'सहज समाधि' की अन्तिम आध्यात्मिक अवस्था में होता है, तब ही उसे पुरूष अजायब (परम पुरूष) के स्वरूप का साक्षात्कार होता है। पराआध्यात्म के इस गुह्यतम रहस्य को किसी ने भी विगत तीन युगों (सत् युग, त्रेता, द्वापर) में नहीं बताया, क्योंकि यह गुप्त रहस्य संत के सिवा और किसी को विदित नहीं होता। विगत तीन युगों तक सारे ऋषि, मुनि, योगी, तपस्वी आदि अज्ञानान्धकार में पड़े रहे।

'सतयुग त्रेता द्वापर बीता। काहु न जानी शब्द की रीता।।
कलियुग में स्वामी दया विचारी। प्रगट कर के शब्द पुकारी।।'

कलियुग में, जब संत सतगुरू अवतरित हो कर, पुरूष अजायब की चर्चा करते हैं, तब भी उनकी बात का कोई विश्वास नहीं करता। वे कहें भी तो किससे कहें? कोई बिरला गुरूमुख ही संत सतगुरू की बात को सुनता और समझता है। कारण यह है कि सभी व्यक्तियों के अन्तर में काल पुरूष विराजमान है। उसने, जीवों को माया में भटकाने के लिये, वेद–पुराण का वाणी–जाल फैलाया हुआ है; षट् शास्त्र का बुद्धि जाल बिछाया हुआ है,।

गुप्त रहस्य को न समझ पाने का एक और भी कारण है। वह यह है कि अहंकारी को संतमत का सूक्ष्मतम ज्ञान समझाना सम्भव नहीं। परम तत्व ज्ञान को पाने के लिये अहंकार–ममत्व को त्यागना अपरिहार्य है।

कोई सच्चा जिज्ञासु जब दीन आर्त भाव से संत सतगुरू के सम्मुख आता है, तो सतगुरू उसे अपनी दया दृष्टि से 'सहज समाधि' की अवस्था में पहुंचा देता है। किन्तु अहंकारी जीवों को काल माया–जाल में उलझाए रखता है।

सतगुरू की विशेष कृपा से योगी की 'जड़–चेतन' की महा कठिन ग्रंथि खुल जाती है और योगी की सुरत (विशुद्ध आत्मा) जड़ जगत का त्याग कर, चेतन लोक में सदा के लिये प्रवेश कर जाती है और अजर, अमर, अविनाशी अवस्था को प्राप्त कर लेती है।

गुरू मुख

आम तौर पर विश्व–मानव दो भागों में बंटा हुआ हैः

1. मनमुख और

2. गुरूमुख।

जो व्यक्ति अपने मन के मुताबिक काम करता है, उसे 'मनमुख' कहते हैं, और जो व्यक्ति सतगुरू या मुर्शिद या हादी की आज्ञा, हिदायत के अनुसार कार्य करता है, उसे 'गुरूमुख' कहते हैं। 'मनमुख' मोह और अज्ञान के अंधकार में भटकता हुआ, गलतियां करता हुआ, जीवन में दुःख भोगता है, जब कि 'गुरूमुख', अपने गुरू–मुर्शिद के आदेश और हिदायत के अनुसार कार्य करते हुए, सुखी और जीवन में सफल रहता है।

गुरू अपने 'गुरूमुख' शिष्य की जिम्मेदारी स्वयं निभाता है और उसकी देख–रेख करता है और अन्ततोगत्वा उसे 'इष्ट पद' पर पहुंचा देता है, जबकि 'मनमुख' अपने प्रारब्ध कर्म के फल भोगता हुआ, चौरासी लाख योनियों में भटकता हुआ, दुःख झेलता रहता है।

सहज समाधि

आदि संत सतगुरू कबीर साहिब का शब्द है

'साधो सहज समाधि भली।
गुरू प्रताप भयो जा दिन से, सुरत न अनत चली।।
जहां जहां डोलूं सोई परिक्रमा, जो कुछ करूं सो सेवा।
जब सोऊं तब करूं दंडवत, पूजूं और न देवा।।
कहूं सो नाम सुनूं सोई सुमिरन, खाऊं पियूं सो पूजा।
गृह उजाड़ एक सम लेखूं, भाव मिटाऊं दूजा।।
आंख न मूंदूं कान न रूंधूं, काया कष्ट न धारूं।
खुले नयन मैं हंस हंस देखूं, सुन्दर रूप निहारूं।
शब्द निरन्तर से मन राता, मलिन वासना त्यागी।
उड़त बैठत कबहूं न छूटे, ऐसी तारी लागी।।
कहें कबीर यह उनमुनि रहनी, सोई प्रगट कर गाई।
दुख सुख से इक परे परम पद, तेहि पद रहा समाई।।'

यथार्थ–बोध

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज द्वारा रचित पुस्तक 'यथार्थ–बोध' इतनी सुगठित है कि मुझसे इसके अंश अलग नहीं हो पाये। जो भी अंश मैंने अलग करना चाहा वह बिना आगे–पीछे के संदर्भ के बगैर बेमानी और अधूरा लगता है। अतः इस नायाब ग्रंथ को तो सम्पूर्ण रूप से ही आत्मसात् करने की जरूरत है।

हिदायत नामा

'धर्म' बाहर से आने वाली कोई वस्तु नहीं है। प्रत्येक तत्व, योनि का धर्म उसके अंग–संग होता है। जल का धर्म है 'शीतलता', अग्नि का धर्म है 'ज्वलंतता', लवण का धर्म है 'लावण्य', शक्कर का धर्म है 'मिठास', अमृत का धर्म है 'अमरत्व', विष का धर्म है 'मृत्यु', देवता का धर्म है 'देवत्व', दानव का धर्म है 'दानवत्व'। ठीक इसी प्रकार मानव का धर्म है 'मानवता'। धर्म के विनाश के साथ ही तत्व या योनि का भी विनाश हो जाता है। मानवता धर्म के विनाश के साथ ही मानव का भी विनाश हो जाता है।

यह सारा जगत एक अखंड परिवार है। गुरू इस परिवार की माता और दयाल (अकाल) पुरूष इस परिवार का पिता है; और सारे नर–नारी इनकी सन्तान हैं। इस नाते सारे नर–नारी परस्पर भाई–बहन हैं। इनका धर्म है कि गुरू के लिखे हुए शब्द, साखी और पुस्तकों को उनकी गहराई में उतर कर पढ़ें और गुरू की शिक्षा, उपदेश और नाम को अपने दैनिक व्यवहार में उतारें, तभी उनका सच्चा कल्याण होगा; तभी उनके काल, कर्म और माया के सारे बंधन कट सकेंगे, और वे पूर्ण निर्बन्ध हो कर, जीते जी परम धाम को प्राप्त होंगे।

युग नायक के तीन महामंत्र

1. सनातन धर्म वह नैसर्गिक नसेनी (सीढ़ी) है, संत मत जिसकी सर्वोपरि पौड़ी है, जो सुरत (विशुद्ध आत्मा) को निर्वाण (परम पद) अवस्था में पहुंचाती है। सनातन घर्म और संत मत दो पृथक भिन्न धर्म नहीं, बल्कि एक ही पूर्ण धर्म है, जिसे 'मानव–धर्म'

कहते हैं।

2. काल और दयाल (अकाल) दो पृथक अस्तित्व नहीं हैं। काल की सत्ता वास्तव में दयाल (अकाल) की परम सत्ता का ही वितान (विस्तार) है, जो दयाल की सत्ता पर ही आधारित है। अतः काल को प्रतिकूल न समझते हुए, उसे अपने अनुकूल बना लो।

3. इहिलोक और परलोक, स्वार्थ और परमार्थ, दीन और दुनिया, दो अलग–अलग लोक नहीं, बल्कि मानव जीवन के ही दो पक्ष (पहलू) हैं। इनमें अंतर या भेद नहीं, बल्कि समता, एकता भाव में व्यवहार करना चाहिये।

परम संत सतगुरू हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने काल, माया और कर्म के बंधनों से मुक्ति एवं कल्याण हेतु इन तीन मूल सिद्धान्तों का उपदेश दिया।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज का पांचवा ग्रंथ एक काव्य ग्रंथ है जो अनमोल है। हालांकि यह काव्य–ग्रंथ बहुत पहले ही लिखा जा चुका था लेकिन किन्हीं कारणों वश इसका प्रकाशन पहले न हो सका और 2013 में उनके कनिष्ठ पुत्र श्री दयाल राय द्वारा किया गया। इस ग्रंथ का एक–एक शब्द गूढ़ है और केवल पढ़ने से ही ताल्लुक रखता है।

पवन मल्लहन
आर–31 मॉडल टाउन
होशियारपुर (पंजाब)

सूचना

सभी सत्संगी भाइयों और बहनों को सूचित किया जाता है कि फरीदाबाद एवं बल्लभगढ़ के सत्संगियों के आग्रह पर महाराज जी के आदेशानुसार अब एक रविवार को छोड़कर सत्संग महाराज जी की कोठी न0 82 सैक्टर 10, फरीदाबाद में हुआ करेगा, और उससे अगले रविवार को दुर्गापुर धाम पर सत्संग हुआ करेगा अर्थात् एक रविवार को दुर्गापुर और दूसरे को फरीदाबाद में सत्संग हुआ करेगा।

जनरल सेक्रेटरी

श्रद्धेया मातृवत् आचार्या रत्ना पंडित जी के विचार परम संत हुजूर मानव दयाल जी के दिनांक 23 फरवरी 2014 वैभव दिवस के अवसर पर

(विशेष टिप्पणी–कहते हैं कि जो माँ अपने बच्चे को उसकी गलती पर नहीं डांटती वह बच्चा आगे चलकर स्वयं के लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए, देश के लिए और मानव जाति के लिए कलंक बन जाता है। दूसरी बात यह है कि बच्चों के कुचरित्र के लिए उसके माता–पिता, एक नागरिक के दुष्चरित्र के लिए उसका देश और एक शिष्य के कुसंस्कार के लिए उसका गुरू जिम्मेदार होता है और उन्हें किसी न किसी रूप में उसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। संतमत में तो यह भी कहा जाता है कि सभी जीव मालिक का ही रूप हैं लेकिन जो आचार्य या गुरू होते हैं उनके अन्दर तो मालिक साक्षात् रूप से दैदिप्यमान होते हैं, इसलिए गुरू या आचार्य का अपमान घोर नरक का द्वार है। यदि सारा संसार किसी का बैरी हो जाए और यहां तक कि भगवान भी विपरीत हो जाए और यदि गुरू उस पर दयालु हैं तो उसका बाल–बांका भी नहीं हो सकता। वैसे तो गुरू या आचार्य किसी पर भी क्रोध नहीं करते, यदि किसी कारण वश वे किसी पर क्रोध करते भी हैं तो उसमें भी उसकी भलाई ही छिपी होती है जिस पर वे क्रोध करते हैं। यह सब अनर्गल बातें इस विशेषांक में लिखने का अभिप्रायः यह है कि एक तुच्छ जीव के द्वारा एक प्रतिष्ठित एवं मातृवत् आचार्या का घोर अपमान हो गया है, जिससे उनका क्रोध करना उपरोक्त सभी दृष्टिकोण से उचित है। उनको अधिक मानसिक वेदना न हो इसलिए उनसे त्वरित क्षमा मांगने के लिए यह लेख लिखा जा रहा है। अफसोस सिर्फ इतना ही है कि गलती तो राजेश और सिर्फ राजेश की थी और उसकी सजा मिली उसके गुरूदेव को। अतः राजेश अपने गुरू, अपनी माँ स्वरूप आचार्या और आप सभी से

बिना शर्त माफी मांगता है और करबद्ध प्रार्थना करता है कि उसके अक्षम्य अपराध को बच्चा समझकर क्षमा कर दें और अपने चरणों में लगाए रखें और अपनी नजरों से न गिरायें, चाहे कितनी भी सजा दें क्योंकि यदि नजरों से गिर गया तो फिर संभल पाना मुस्किल हैं।)

अब माताश्री के द्वारा लेखों को मूलरूप से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है (इससे पहले इनमें काट–छांट की गई थी, जिस के कारण माताश्री आहत हुईं और उनकी भावना को ठेस पंहुची।) इनमें से पहला लेख (अप्रैल–जून 2014 में छप चुका है, दूसरा लेख अभी छपना बाकी था, लेकिन अब समय की नजाकत को देखते हुए इसी पत्रिका में छापा जा रहा है और तीसरा लेख इस पत्रिका में पहले से ही लिखा जा चुका था, जो इस पत्रिका में अन्यत्र छपा है। राजेश माताश्री का अहसानमंद है कि उन्होंने राजेश द्वारा अन्य लेखों में की जाने वाली काट–छांट के भयंकर अपराध से बचा लिया।)

पहला लेख–

'मेरा यार मेहरबान है मेरी बन्दगी से पहले
मेरा प्यार शादमा है मेरी आशकी से पहले
मुझे मौत आ चुकी है मेरी जिन्दगी से पहले
वह पिला चुके हैं बेहद मेरी बेखुदी से पहले
समझेगा कोई क्योंकर मेरी मस्ती से पहले
आवाज को हो क्योंकर हारने की चिन्ता
मेरी जीत हो चुकी है गवाह की पेशगी से पहले
जा के मस्जिद में सुबह–शाम पीता रहता हूं
कौन कहता कि मैं हराम पीता हूं
खानाये रूह में खिंचती है हरदम जो आवाज मुझे
पयमाने सिर में वह जाम पीता रहता हूं।

माहराज जी उच्च कोटि के शाहों के शाह हैं। अभ्यास की ऊँची अवस्था तथा जीवन मुक्त अवस्था में सदा रहते हैं। कबीर जी की भांति जांत पात के झंझटों से दूर एक उच्च कोटि के महा–अनुभवी हैं।'

दूसरा लेख–

'राधास्वामी सहाय,

23 फरवरी मानव दयाल जी पुण्य प्रकाश दिवस पर नानक देव जी का शब्द पढ़ा गया, जिसमें गुरू की महानता की परिभाषा प्रकट की गई। पूर्ण गुरू श्री स्वामी जी माहराज की वाणी के अनुसारः–

गुरू सोई जो शब्द स्नेही, शब्द बिना दूसर नहि कोई।
शब्द कमावै सौ गुरू पूरा, उन चरनन की हो जा धूरा।।

शब्द रूपी गुरू से ही हमारे लोक तथा परलोक के कार्य पूरे होते हैं। गुरू शरीर नहीं है। शरीर तो सबों को छोडना पडता है। शब्द द्वारा ही गुरू चिताते हैं। शब्द स्वरूपी गुरू शिष्य की संभाल करते हैं। वह नूरानी स्वरूप तथा जलता चमकता हुआ ज्योति पुंज ही हमारी रहनुमाई करता है। संसार का तथा परलोक का कोई भी कार्य गुरू के बिना सिद्ध नहीं होता है। संसार में आने पर हर मंजिल पर एक शिक्षक की आवश्यकता पडती है। मां प्राणी की पहली शिक्षक है। जो अपने बच्चे को चलना, बोलना, पढ़ना सिखाती है। या जीने का रास्ता दिखाती है। संसार की पढ़ाई की पुस्तकें पुस्तकालयों में भी मिलती हैं। पर उस पढ़ाई को पढ़ कर जब तक अभ्यास नहीं करे, तब तक सफलता अथवा डिग्री नहीं मिलती। उसके लिए उच्च विद्यालय की आवश्यकता पडती है। आध्यात्म विद्या तो बहुत कठिन है। इस के लिए सूली पर चढ़ना या तलवार की धार से गुजरना पडता है। इसके लिए कामिल गुरू की आवश्यकता होती है। जो हमें नाम की बख्शिश देकर (दान देकर) हमारे सारे भ्रम तथा संशय दूर कर देते हैं। वह हमें चिताते हैंः–

"संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहां
कर याद अपने घर की, स्वराज्य निष्कंटक जहां"

वे अपनी रहस्यात्मक वाणी द्वारा हमारी प्रवृति बहिर्मुखी होकर अन्तर्मुखी कर लेते हैं। इसके लिए हमें पहाड सर पे नहीं उठाना है अपितु शरणागत हो के जीना है। जैसे चक्की के कुछ दाने जो कील से लगे रहते हैं, वह नहीं पिसते हैं। बाकी सारा दाना

चक्की पीस लेती है। संसार में निर्लेप रह कर मालिक की याद में ही चिपकना है।

गुरू के प्रताप तथा प्यार से बडे–बडे कष्ट के दीवार हटते हैं। वे अपने शिष्य पर आध्यात्मिकता का खजाना तक लुटाते हैं पर इसके लिए हमें अपने में पात्रता लानी आवश्यक है। हमारे गुरू देव हमसे दूर नहीं हैं। हमारे गुरू हमारे आंखों का नूर हैं। जो सदा हमारे करीब हैं।

"जो गुरू बसे बनारसी, शिष्य समुन्द्र तीर
एक पल बिसरे नहीं, जो गुन होवे शरीर।"

दूध में तभी मख्खन निकलेगा जब हमें उस से निकालने की विधि मालूम हो। हमारे गुरू पल–पल हमारे साथ है जो हमारी रक्षा करते हैं। उनकी वाणी रहस्यात्मक होती है जो हमारी संभाल करते हैं तथा एक योग्यता पूर्ण शिक्षा होती है, जिसमें जीव का कल्याण निहित होता है। एक बार गुरू नानक देव जी अपने शिष्यों के समेत जंगल में घूमने निकले। तो रास्ते में एक मुर्दा लाश को दिखा कर शिष्यों से कहा कि मुर्दा लाश है–खाओ। तो यह आदेश शिष्यों को अच्छा नहीं लगा। तो एक–एक करके सभी भाग गये। केवल एक शिष्य रहा। वह लाश के इधर–उधर चक्कर काटता रहा। तो गुरू देव ने पूछा कि इधर–उधर क्या चक्कर काटता है? शिष्य बोला, 'देखता हूं कहां से शुरू करूं– सिर से या पैर से।' ज्यों ही उसने शुरू करना चाहा तो देखा कि नानक जी का कडा प्रसाद था। उस शिष्य को उसने अंगद–देव का नाम रख दिया। अंगद अपने अंग को ही कहते हैं। जो अपने गुरू के वचनों पर विश्वास लायेगा वही नाम, और शौहरत की न्यामत पाता है। उसी को मालिक अपना जैसा बना कर उच्च स्थान की प्राप्ति कराता है। अपने शिष्य की नाना प्रकार से गुरू कभी–कभी परीक्षायें भी लेता है। ताकि वह सोने से कुन्दन बन जाये। अपने शिष्यों की कमियों को दूर करने का माध्यम उन्हीं के पास है। और उनको चिताने का अलग अपना ढंग होता है। जीवन में ऐसी घटनायें घटती हैं जिसका भेद समझकर भी एक रहस्यात्मक घटना

बन जाती हैं।

इसी प्रकार एक दिन सभी सतसंगी हम माहराज शब्दानन्द जी के पास बलिया गये। वापसी पर माहराज जी तथा माता जी भी साथ हो ली। रास्ते में सतसंग आदि हुये दो दिन का रास्ता था तो अगले दिन माहराज जी ने अपनी आदर्शात्मक वाणी सुना दी। तो ऐसी ही उन्होंने मुझे आदेश दिया कि कागज पैन निकालो और लिखो। ऐसे तैसे व्यवस्था करके लिखने बैठे। जो इस प्रकार थाः–

'मेरा यार मेहरबान है, मेरी बन्दगी से पहले
मेरा प्यार शादमा है मेरी आशकी से पहले
वह पिला चुके हैं बेहद मुझे, मेरी बेखुदी से पहले
मुझे मौत आ चुकी है जिंदगी से पहले
समझेगा कोई क्योंकर मेरी मस्ती से पहले
आवाज को हो क्यों कर हारने की चिन्ता
मेरी जीत हो चुकी है मेरी गवाही की पेशगी से पहले
जा के मस्जिद में सुबह–शाम पीता रहता हूं
कौन कहता है कि मैं हराम पीता हूं
खानाये रूह में खिंचती है हरदम जो आजान मुझे
पयमाने सिर में वह जाम पिलाया है मुझे।

इस रहस्यात्मक शेर और शायरी को समझ कर इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि अपने गुरू के रूबरू तथा उनके सानिध्य से सारे राग–द्वेष आदि मिट जाते हैं। अध्यात्म के शीशे से मस्ती की प्याली पिला कर जागरूकता पर पहुंचा देता है। शब्दानन्द जी भी एक ऊँची अवस्था की दशा में रहने वाले सदा अपने भक्तों तथा प्रमियों को अपनी जैसी अवस्था में पहुचाते हैं। वे एक शाहों के शाह तथा महा अनुभवी सतगुरू वक्त के पूर्ण सतगुरू अपने भक्तों के रहनुमा हैं। उनका सीधापन तथा प्रेम पूर्ण व्यवहार सब मानव जाति को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता है। हम ऐसे पूर्ण गुरू के दीर्घ आयु की आकांक्षा करते हैं तथा उनके पुण्य चरणों में अपने भाव सुमन अर्पित कर उनकी दया तथा आशीर्वाद की प्रार्थी हूं

रत्ना पंडित, दिल्ली

आचार्य आनन्द प्रकाश त्यागी जी के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के प्रति

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज की याद में एक भाव भीना गीत

सूरत हमें शब्द गये क्यों छोड़।
शब्द पिया बिन सब जग सूना, ढूंढूं मैं कित ठौर।।
सूरत हमें शब्द.....
कर कर याद रात दिन रोवें।
तन मन की हम सुध बुध खोवें।।
दर्शन उनके किस विधि होवें, मन में उठत हिलोर।
सूरत हमें शब्द.....
शब्द पिया संग प्रीति लगाई।
शब्द नाम में लगन लगाई।।
खता क्या हुई जो करी रूसवाई, चले गये दिल तोड़।
सूरत हमें शब्द.....
जग छोड़ा जब बन्धन तोड़ा।
शब्द पिया संग नाता जोड़ा।।
किसके भरोसे अब हमें छोड़ा, चले गये मुख मोड़।
सूरत हमें शब्द.....
घायल का दुख घायल जाने।
कहां पै जाऊँ किसे सुनाने।।
आते नहीं क्यों राह दिखाने, बहुत लिये हम दौड़।
सूरत हमें शब्द.....
शब्द गुरू प्रकाश चरण हैं।
दर्शन का साधन सुमिरण है।।
प्रेम भाव बिन नहीं अवतरण है, 'आनन्द' छोड़ मरोड़।
सूरत हमें शब्द.....

कुछ दिन पूर्व जब हुजूर शब्दानन्द जी महाराज बीमारी की अवस्था में अपने सुपुत्र श्री दयाला राय जी के साथ बलिया चले गये थे तब उनके कुछ श्रद्धालुओं ने सत्संग हाल में उनके प्रति आस्था और श्रद्धावश और उनको हाजिर–नाजिर मानते हुए उनके फोटो पर फूलों का हार पहना दिया। कुछ अन्य द्धालुओं को यह बात बुरी लगी क्योंकि हिन्दू परम्परा, संस्कार एवं प्रथा के अनुसार जीवित व्यक्ति के फोटो पर पुष्प माला नहीं पहनाई जाती। मैं व्यक्तिगत रूप से इस घटना का न समर्थन करता हूं न विरोध। यह एक विवादग्रस्त विषय है और संतमत में दाता दयाल जी महाराज अपने एक शब्द में कहते हैं–

'वाद विवाद में राम नहीं हैं, राम न पूछा पेखी में।
राम दास ने राम को पाया सहज ही देखा देखी में।।'

लेकिन प्रसंगवश इस विषय में एक सत्य घटना का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। परम संत रामकृष्ण परमहंस जी का नाम आप लोगों ने जरूर सुना होगा। उन्होंने कभी भी किसी को अपनी फोटो नहीं खींचने दी। इसी प्रकार ब्यास के डेरे के संस्थापक बाबा जैमलसिहं बहादुर के बारे में भी कहा जाता है कि उन्होंने भी कभी अपनी फोटो नहीं खींचने दी और न कभी उनकी फोटो किसी सतसंगी के पास देखी गई। हकीकत का मुझे पता नहीं, केवल सुनी सुनाई बात है। हां तो मैं रामकृष्ण परमहंस की बात कर रहा था। एक बार गुरूपूर्णिमा के दिन नरेन्द्र (जो बाद में विवेकान्द कहलाये) ने एक योजना बनाई और गुरूदेव के कमरे में जाकर प्रणाम करके बोला कि महाराज! आज मौसम अच्छा है जरा बाहर घूम लें। वे राजी हो गये। नरेन्द्र ने घूमते–घूमते जानबूझ कर चर्चा को ब्रह्म, ब्रह्मलीनता या समाधि जैसे विषयों की दिशा में घुमा दिया। गुरू की आंखे पारदर्शी होती हैं। वे शिष्य के जीवन पथ का दूर तक अवलोकन कर लेती हैं। गुरू उन सभी बातों को पहले ही जानते हैं जो शिष्य की राह में रूकावट या सहूलियत पैदा करने वाली हैं। इसलिए गुरू जी अपने शिष्यों के प्रेम में वशीभूत होकर अपने बच्चों की योजना का हिस्सा बनते जा रहे थे। थोड़ी देर में

उनकी सुरत चढ़ गई और वे समाधिमग्न हो गए। इस भावलीन स्थिति में वे विष्णु मंदिर के चबूतरे पर जा विराजे।

बस यही अवसर था! मौका ताड़ते ही नरेन्द्र ने अपने गुरू–भाइयों को इशारा किया और उनके साथी श्री अविनाश चंद्र जी को जो उस जमाने के कलकत्ता के सबसे मशहूर फोटाग्राफर थे को उनकी फोटो खींचने को कहा। तीन सप्ताह बाद जब वह तस्वीर लेकर आया तो उसने वह तस्वीर डरते–डरते श्री रामकृष्ण को दिखलाई। तस्वीर देखते ही परमहंस जी ठहाका लगाकर हंसे। फिर एकाएक उन्होंने आले में रखे कुछ पुष्प उठाए और अपनी तस्वीर की ओर उछाल दिए। साथ ही झुककर प्रणाम किया। यह देख कर श्रीमां पूछ बैठीं –'यह क्या कर रहे हैं आप?'

परमहंस बोले–'पुष्प अर्पण और पूजन! यह मेरे स्थूल रूप की तस्वीर भर नहीं है। यह मेरी प्रतिछाया है। यह मेरा साक्षात् स्वरूप ही है। जहां मैं साकार नहीं होऊँगा, यह मेरी साकार अनुभूति कराएगी। मेरे शिष्य और भक्त इसके जरिए मुझसे खूब बातें किया करेंगे।'

इस घटना से तो मुझे भी यह आभास होने लगा है कि 'गुरूदेव की तस्वीर केवल एक फोटो भर नहीं हुआ करती, यह उन्हीं का साक्षात् स्वरूप हुआ करती है।'

मैं संतमत में ज्यादा पुराना नहीं हूं, इसलिए कोई भी बात दावे के साथ नहीं कह सकता। लेकिन मैंने सद्गुरूओं के मुखारविंद से ही यह सुना है कि गुरू न जन्म लेता है न मरता है, वह तो प्रकट होता है और अप्रकट होता है। वह अजर, अमर, विभु अविनाशी होता है। जब गुरू की महिमा को, गुरू की वाणी को, गुरू के ज्ञान को नहीं लिखा जा सकता, उसे पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता तो उसे एक फोटो में भी सीमित नहीं किया जा सकता, यह भी सनातन सत्य है। अगर हम हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को एक फोटो में ही सीमित मानते हैं तो अभी हम संतमत के पथ पर पहला कदम भी नहीं चले हैं।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के सत्संग भी मैंने ज्यादा नहीं सुने हैं लेकिन जब कभी भी उनके सत्संग में जाने का सौभाग्य मुझे मिला तो मुझे कुछ–कुछ याद है कि वे कहा करते थे कि 'जो अज्ञानी है, पर अपने को ज्ञानी समझता है, उससे बचो। जो अज्ञानी है और अपनी अल्पज्ञता से परिचित है, उसे सिखाओ। जो ज्ञानी है, पर ज्ञान को लेकर शंकालु है, उसे जगाओ। जो ज्ञानी है और ज्ञान–मार्ग पर आस्थावान है, उसका अनुसरण करो।'

एक बार उन्होंने यह भी कहा था कि यदि इस अंतरिक्ष की छतरी तले कोई भी ऐसा शिष्य है, जो अपने विकारों या वासनाओं या परिस्थितियों के हाथों विवश है–तो इसके केवल दो ही कारण हो सकते हैं। या तो उसका गुरू अपूर्ण है या फिर शिष्य का शिष्यत्व अधूरा है। हुजूर शब्दानन्द ही महाराज जी ने अपनी चार किताबों में इस बात का जिक्र किया है कि अध्यात्म विज्ञान पर आधारित है, यह कोई अंधविश्वास या मेस्मेरिज्म (मोहिनी–तंत्र) का खेल नहीं है।

आइंस्टीन का अनुभव भी हुजूर शब्दानन्द जी के विचारों से मिलता जुलता है। आईंस्टीन ने कहा था–'विज्ञान आवश्यक है। उसी के सहारे दैनिक क्रिया–कलाप चलते हैं। पर अन्तर्ज्ञान का अपना क्षेत्र और अस्तित्व है।' ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन होने के बाद न कोई संशय रहता है, न द्वन्द्व। अतः पूर्ण आस्था के साथ ईश्वर के अस्तित्व को मानने का यही एक तरीका है कि हमको आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। और इसकी विधि या इसकी कुंजी केवल सद्गुरू के सान्निध्य में रहकर ही मिलती है।

मैंने हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को उनकी जवानी में देखा था जब वे कुरता पजामें में हुजूर मानव दयाल जी के साथ रहते थे और शब्द गाया करते थे। उनकी सुरीली आवाज, लय और ताल इतना गजब का था कि मैं उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सका। बाद में उन्होंने अपने शरीर की परवाह न करते हुए अपने गुरू की आज्ञा का पालन दिलो–जान से किया और ऐसा करते–करते एक

दिन वे स्वयं अपने आप में गुम हो गये। शरीर तो उन्होंने अपनी इच्छा से बहुत दिनों बाद छोड़ा, उससे पहले वे विदेह अवस्था में बहुत दिन तक रहे। वे कहीं नहीं गये क्योंकि जो सर्वव्याप्त होता है वह हर समय हर जगह मौजूद रहता है। ऐसे परमतत्वाधार को मैं सब जगह हाजिर–नाजिर मानकर कोटि–कोटि नमन करता हूं।

अपने अन्तर में जन्मजन्मातरों से छिपे हुए कुछ ऐसे ही भाव अपनी ही इच्छा के वशीभूत होकर पद्य की भाषा में अनायास ही निम्न प्रकार प्रस्फुटित हो गये–

न तू आता, न तू जाता, बस छुपाता आपको।
होकर प्रगट हरता है, सब जीवों के सन्ताप को।।
न जन्मता न तू मरता, अजर अमर अविनाशी तू।
रूप व्यापक सब में तेरा, हो रहा प्रकाशी तू।।
दीखता उनको जो करते, ध्यान के अभ्यास को।।
भक्तों के तू भाव में है, ज्ञानियों के ज्ञान में।
योगियों के योग में तू, ध्यानियों के ध्यान में।।
प्रेमियों के प्रेम में, मैं देखूं सबमें आपको।।
फैलता अज्ञान जब, बढ़ते अधम अभिमान हैं।
धर्म कर्म को भुला कर, करते जब मन मानी हैं।।
होता प्रगट है तभी जब बढ़ता देखे पाप को।।
शब्द रूप सतगुरू तू, तू ही शब्दानन्द है।
रूप तेरा अद्भुत अनुपम, तू ही सच्चिदानन्द है।।
सब में तू 'आनन्द' है, हरता तू ही त्रिताप को।।
न तू आता, न तू जाता, बस छुपाता आपको।
होकर प्रगट हरता है, सब जीवों के सन्ताप को।।

मालिक सबका कल्याण करे।

आनन्द प्रकाश त्यागी
वसुंधरा, गाजियाबाद, यू0पी0

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के चार धाम

विधि का विधान अटल है और यह वैज्ञानिक भी है–किसी अंध–विश्वास पर आधारित नहीं है– अर्थात् इस संसार में जो भी घटित होता है या हो रहा है यह सब पूर्व निर्धारित है। उदाहरण के लिए परम–तत्वाधार महर्षि शिवब्रतलाल जी के परमप्रिय आध्यात्मिक पुत्र परम दयाल जी महाराज का अपने गुरू को यह कह देना कि "दाता तेरी धाम उजड़ जायगी" (क्योंकि उस धाम में कुछ स्वार्थी लोग नाजायज पैसा लगा रहे थे) और दाता का यह कहना कि "जैसी मालिक की मौज" अर्थात् उस कथन को बिना संकोच किये स्वीकार करना, यह दर्शाता है कि विधि का विधान अटल है। कालान्तर में उसी धाम में उन्हीं गुरू की वन्दना करते हुये किसी अन्य सत्संगी ने उन्हीं परम दयाल जी को चांटा मारा और उसी समय दाता दयाल जी ने उस धाम को हमेशा के लिये त्याग दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि सब घटनायें पूर्व नियोजित होती हैं। जिन परमतत्वाधार दातादयाल जी महाराज के दरबार में परम दयाल पं0 फकीर चन्द जी महाराज को चांटा मारा था उनके प्रति दाता दयाल जी लिखते हैं–

मैं नहीं राम कृष्ण का सेवक ईश ब्रह्म नहीं जानू।
मैं तो नाम फकीर दिवाना, सबसे बढ़कर मानू।।
जो फकीर मोहे दर्शन देवे अपना भाग सराहूं।
अपने तन के चाम की जूती, पग फकीर पहनाऊँ।।

जब परम दयाल जी ने यह कहा था कि "दाता तेरी धाम उजड़ जाएगी" उसी समय एक अन्य श्रद्धालु महाशय ने उस धाम से कुछ दूर जाकर एक पेड़ के नीचे बैठकर चिंतन किया और उसकी समाधि लग गई। जब वे समाधि से उठे तो उन्होंने उस जगह के मालिक का पता लगाकर उस जमीन को खरीदकर दाता को भेंट कर दी। इस नई जमीन पर आज दाता दयाल जी महाराज का नया "राधास्वामी धाम" स्थित है।

समय बीतने पर परमदयाल पं0 फकीर चन्द जी महाराज ने अपने गुरू की शिक्षा को आलमगीर करने के लिए होशियारपुर पंजाब में "मानवता मंदिर" की स्थापना की और 95 वर्ष की आयु तक जनता की निःस्वार्थ सेवा करते रहे। और अंत में उस मंदिर को यह कहते हुये विदा हो गये (अपने अमेरिका के दौर के लिये, जहां से उनका भौतिक शरीर बक्से में बंद होकर आया था)–

बुलबुल का चमन से आशयाना उठ गया।
मेरी बला से यहां बूम रहे या गुमा रहे।।

अब ऐसे महान तपस्वी, सत्यवादी परमतत्व के अवतार परम दयाल पं0 फकीर चन्द जी महाराज ने अपनी मशाल अपने से अधिक सशक्त और योग्य महापुरूष ड़ा0 आई0 सी0 शर्मा, मानव दयाल जी महाराज को सौंपी जो अमेरिका का वैभव त्याग कर अपने गुरू के आदेश पर समय से 9 वर्ष पूर्व रिटायरमेन्ट लेकर भारतवर्ष आ गये थे और 19 वर्षों तक रात–दिन अपनी जिम्मेदारी पूरी करते रहे। उन्होंने भी दुहाई के पास (जिला गाजियाबाद उ0 प्र0) में देश–विदेश के सत्संगियों के लिये देहली के पास मानव धाम बनाने का प्रयास किया। लेकिन जिनके गुरू ने अपने हक–हलाल की कमाई से बने 'मानवता मंदिर' को बिना आसक्ति के एक क्षण में छोड़ दिया था, वे भला अपने परमप्रिय शिष्य मानव दयाल जी को 'मानवधाम' के झंझट में क्यों फंसने देते, अतः यह धाम अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही उजड़ गया।

अब विधि का विधान देखिये कि जिन महान आत्मा ने दाता दयाल जी को 'राधास्वामी धाम' के लिये जमीन उपलब्ध कराई थी उनका नाम था श्री गोपाल नारायण राय जी। उनके सुपुत्र परमसंत शब्दानन्द जी महाराज अपने रिटायरमेन्ट के बाद 1983 से ही हजूर मानवदयाल जी के सम्पर्क में आ गये थे और दो–जिस्म–एक–जान की मिशाल कायम करते हुये रात–दिन उनकी सेवा में लगे रहे। हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने अपने अन्तिम समय में हुजूर शब्दानन्द जी महाराज का हाथ अपने हाथ में लेते हुये (जब वे एस्कार्ट हॉस्पीटल, फरीदाबाद में थे) कहा था, "मुझे संभाल कर

रखना, अभी नहीं बाद में और तुम अभी से अपना काम शुरू कर दो।" हजूर शब्दानन्द जी महाराज के अन्दर दातादयाल जी महाराज, परमदयाल जी महाराज (इन्हें नामदान परमदयाल के द्वारा दिया गया था) और मानवदयाल जी महाराज की शक्ति मौजूद है। इन्होंने अपने गुरू के मिशन को आगे चलाने के लिए ग्राम दुर्गापुर जिला पलवल (हरियाण प्रदेश) में हजूर मानवदयाल जी की समाधि स्थल की स्थापना कराई और वहीं रहकर अपने फर्ज को रात–दिन बिना आसक्ति के निभाया। इस स्थान का नाम 'धुरपद धाम' रखा गया है।

बात यहीं खत्म नहीं होती, अभी चक्र पूरा नहीं हुआ अभी चौथा धाम स्थापित होना बाकी है। हुजूर शब्दानन्द जी महाराज अपने होशोहवास में रहते हुए धुरपद धाम की वसीयत कर गये जिसमें परम संत हुजूर रवि पंड़ित जी को जो वर्तमान में दुबई में हैं को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया है। साथ ही साथ उनकी अनुपस्थिति में जब तक वह स्थाई रूप से भारतवर्ष नहीं आ जाते तब तक परम संत हुजूर पुष्कर दयाल जी को नाम दान देने और सतसंग आदि का समस्त उत्तरदायित्व निभाने के लिए उसी वसीयत में दर्ज करा दिया हैं। इतना ही नहीं अपनी गुरू–परम्परा को निभाते हुए हुजूर शब्दानन्द जी महाराज भी निर्लिप्त अवस्था में धुरपद धाम को छोड़कर (अपने निजधाम जाने से तीन वर्ष पूर्व ही) अपने पुत्र श्री दयाला राय के पास बलिया चले गये थे।

इसके पीछे भी प्रकृति का कुछ राज छिपा है। अब पता चला है कि हजूर शब्दानन्द जी महाराज जो मालिके–कुल के अधिकृत प्रतिनिधि हैं, ने चौथे धाम की स्थापना के लिए एक स्थान का चयन किया है, जो उनके पिताश्री महान आत्मा श्री गोपाल नारायण राय जी की जन्मभूमी है और वही हजूर शब्दानन्द जी महाराज की भी जन्मभूमि है–उस स्थान का नाम है 'मुबारकपुर'।

यह एक छोटा सा ग्राम है जिला गाजीपुर (उ0 प्र0) में। इस ग्राम का भी अपना इतिहास है। इस गांव की स्थापना मुगल साम्राज्य में हुई थी। कहते हैं एक बार बादशाह जहांगीर का

जन्मदिन था और वह उस दिन किसी कारण से इस इलाके में आये हुये थे। दिसंबर का महीना होने के कारण उस दिन बहुत कड़ाके की ठंड थी। उस ठंड में श्री गोपाल नारायण राय जी के एक पूर्वज श्री लक्ष्मी नारायण राय जी ने जो जहांगीर के दरबार में एक बड़े अहोदेदार थे, अपनी अचकन उतार कर एक गरीब आदमी को ठंड से बचने के लिए दे दी। जब बादशाह सलामत बाहर लोगों से मिलने के लिए आये तो उन्होंने श्री लक्ष्मी नारायण राय जी से पूछा कि क्या बात है, तुम ठंड से क्यों सिकुड़ रहे हो, तो वे तो कुछ बोले नहीं, परंतु वहां मौजूद और लोगों ने बादशाह सलामत को सारी बात बता दी।

इस बात को सुनकर बादशाह सलामत बहुत खश हुये और श्री लक्ष्मी नारायण राय जी को हुक्म दिया कि सामने खड़े घोड़े पर बैठो और एक घन्टे के अन्दर जहां तक तुम चक्कर लगा कर आ सकते हो आ जाओ। जब वे लौटे तो बादशाह ने उन्हें कहा कि यह जमीन तुम्हें तोहफे के रूप में मुबारक हो। तब उस जगह पर जो गांव बसा वह मुबारकपुर कहलाया। हुजूर शब्दानन्द जी महाराज अपने सुपुत्र श्री दयाल राय को अक्सर कहा करते थे, 'दयाला बताओ तो चार धान कौन–कौन से हैं और श्री दयाला उनको कहते थे 1. राधास्वामी धाम, गोपीगंज 2. मानवता मंदिर, होशियारपुर 3. धुरपद धाम दुर्गापुर और 4. मुबारकपुर धाम, गाजीपुर।

हजूर शब्दानन्द जी महाराज की इस इच्छा को मूर्तरूप देने के लिए उनके सुपुत्र श्री दयाला राय जी ग्राम मुबारकपुर में चौथा धाम 'मुबारकपुर धाम' बनाने के लिए कृत–संकल्प है।

(संत श्री मंगलदेव जी ने अपने जीवन काल में ही धुरपद धाम संस्थान न्यास दुर्गापुर जिला पलवल की ओर से सैद्धांतिक रूप से सहयोग देने का वचन दिया था। जब वह धाम बन जाएगा तब धुरपद धाम की ओर से वहां वर्ष में कम से कम एक बार सत्संग का आयोजन किया जाएगा जिसकी पूर्व सूचना दे दी जाया करेगी। जो श्रद्धालु अपना योगदान इस धाम के लिए देना चाहें वे कृपया श्री नरेश कुमार शर्मा, जनरल सेक्रेटरी दुर्गापुर टे0 न0 09813767197 पर संपर्क कर सकते हैं।)–जनरल सेक्रेटरी

श्रीमती पीनू (रीनू) दत्त, फरीदाबाद के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के प्रति

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को लिखा नहीं जा सकता, उन्हें पढ़ा नहीं जा सकता, उन्हें सुना भी नहीं जा सकता। क्योंकि लिखने, पढ़ने और सुनने के लिए शब्दों का सहारा लेना पड़ता है और कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो सीमित न हो। इसलिए जो 'शब्दानन्द' है, जो शब्द में चेतनघन है, शब्दातीत है, शब्द होते हुए भी अशब्द हो गया है, उसे कौन से शब्द से व्यक्त किया जाएगा। अर्थात् उस अव्यक्त को व्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी शब्द तो उन्हीं से निकलते हैं और उन्हीं में समा जाते हैं तो उनको शब्दों में व्यक्त करने की हिमाकत मैं तो नहीं कर सकती, उस असीम सत्ता को शब्दों में मैं तो नहीं बांध सकती।

विज्ञान ने बहुत उन्नति की है लेकिन कोई भी वैज्ञानिक आज तक इस भौतिक जगत को ही पूरी तरह से नहीं जान पाया। इस भौतिक जगत के परे तो अभी अनेक आकाश–गंगायें हैं, असंख्य सौर–मंडल हैं, उनका पता लगाना तो और भी कठिन काम है। और यह सब तो उस मालिक की एक बूंद मात्र से बना है, तो उस मालिक का पूरा पता कैसे चल सकता है? और जिन 'शब्दानन्द' की बात यहां हो रही है वह तो उस मालिक का ही रूप हैं, उसी में ओत–प्रोत हैं, तो फिर उनका भी पूरा–पूरा पता हम जैसे अज्ञानियों को कैसे चल सकता है? नहीं चल सकता। यदि हम अपनी बुद्धि बल से ईश्वर को समझना चाहें, तो यह संभव नहीं है। और यदि ईश्वर देह धर कर सद्गुरू बन कर प्रकट हो जाए, तो ग्रंथ कहते हैं कि फिर तो स्वप्न में भी यह कल्पना मत करना कि तुम उसकी नर–लीला को समझ सकते हो। हां! उसकी समझ तभी आती है जब वह स्वयं अपनी दया से ऐसा करता है।

दाता दयाल जी एक शब्द में लिखते हैं–

'तू अविनाशी अजर अमर है, तू सबका आधारा है।
सब रहते हैं तेरे सहारे, तू ही सबका सहारा है।।
निराधार आधार जगत का, मर्म न कोई लख पावे।
जब तू अपना रूप दिखाये, समझ में तब कुछ कुछ आये।
मन वाणी की गम नहीं तुझ में, अगम अथाह अपारा है।
अलख अगम अव्यक्त अनूपम, अगुण सगुण से न्यारा है।।'

लेकिन गुरू सभी शिष्यों को ऐसा अनुभव ज्ञान नहीं कराते। वे केवल उसी शिष्य को ऐसा अनुभव कराते हैं जो गुरू के प्रति पूर्ण समर्पित हो और कोई उसके विश्वास को रत्ती भर भी हिला न पाए। उसके विश्वास की जड़ इतनी गहरी हो कि वह हर आंधी–तूफान का सामना आसानी से कर सके। यदि स्वयं गुरू भी लीला करके उसे भ्रमित करना चाहे, तो वह डगमगाए नहीं। एक साधक के मन में विश्वास गुरू का कृपा–प्रसाद ही तो है। सावधान! यदि शिष्य गुरू को यह कहे कि आपकी कोई भी लीला से मेरा विश्वास डगमगा नहीं सकता तो इससे बड़ी नादानी क्या होगी? यह तो सरासर अहंकार है। शिष्य को तो दूब जैसा नींवा होना पड़ता है। एक बार जब हम उनसे मिलने बलिया गये तो महाराज जी जानबूझ कर अपना मुंह कभी रूमाल से कभी चादर से ढ़ांप लेते थे। मैं उनकी लीला को समझ गई और उनके पास बैठ गई तो जैसे गाय अपने छोटे बच्चे को प्यार करने लगती है, उन्होंने भी मुझे ऐसा ही प्यार किया।

गुरू महाराज सतसंगियों को कहते थे कि तुम गुरू के पैर इसलिए छूते हो ताकि तुम्हारे दुख–दर्द दूर हो जांए लेकिन तुम यह नहीं समझते कि जो रेडिएशन तुम गुरू के पास छोड़कर जाते हो उनसे गुरू भी तो आहत होता है। इसलिए जब भी गुरू के पास आओ तब मन को शुद्ध करके आया करो या मन को शुद्ध करने के लिए आया करो। गंदे चिचार लेकर गुरू के पास मत आया करो।

किसी शिष्य ने सागर से अंजुलि में पानी भरा और सागर ने जब उससे कहा–'वाह, तुम्हारी अंजुलि तो लबालब भरी है!' तो वह शिष्य बोला कि 'हे सागर देव! क्यों व्यंग्य कर रहे है? लबालब

तो आप भरे हैं। मेरी अंजुलि ने तो आपसे ही सब पाया है। और यह तो अभी भरी दिख रही है, दूसरे ही पल उंगुलियों के जोड़ों से कब पानी रिस जाए, क्या पता? इसलिए हे सागर देव! आप बार–बार कृपा कर मेरी अंजुलि भरते रहना। मुझे पता है कि इससे आपका जल किंचित भी न घटेगा और मेरी अंजुलि भी सदैव भरी रहेगी।' बस! मेरी भी यही विनती है अपने गुरूदेव से।

जब भी निराश होकर मैंने खुद को अकेला पाया,
उन्होंने लाखों दे प्रमाण कहा 'मैं हूं न' तुम्हारा साया।

वे हर समय अपनी मौजूदगी का अहसास मुझे कराते रहते हैं। कभी–कभी एक साधु के वेष में वे मुझे अक्सर मेरे घर के इर्द–गिर्द मिल जाते हैं और मैं उनको ऐसे ही प्यार से खिलाती पिलाती हूं, ऐसे ही प्यार से बात करती हूं जैसे हुजूर शब्दानन्द जी से क्योंकि वे हू–बहू मुझे शब्दानन्द जी ही दिखते हैं।

कैसे बयां करूं मैं गुरूसत्ता के अफसाने को
लुटा दिया हम पर उसने हर कीमती खजाने को।
हर पल अब ये अहसास मेरे दिल में पलता है,
मेरा सद्गुरू मुझे राह दिखाने को साथ चलता है।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने अपनी करनी और रहनी इसी तरह की बनाई हुई थी कि वे अनन्त से आये थे और अनन्त में ही समा गये। ऐसे मुर्शिद के लिए मैं यह कहना मुनासिब समझती हूं–

बुत बनाकर सिजदा करेगा एक दिन जमाना तुझे,
तारीख गाएगी तेरे किस्से–ओ–अफसाने अनबुझे।
पर हमारी निगाहों ने तेरी तामीर कर ली ए खुदा,
क्यों न आज ही हम गुने तेरे गीत दुनिया से जुदा!

मैं अपने बारे में क्या बताऊँ कि मैं क्या थी और उन्होंने मुझे क्या से क्या बना दिया? **कल मैं एक बुझा हुआ सा दिया थी जिसमें कोई रोशनी नहीं थी और न तेल–बाती थी। जबसे मैं उनके सम्पर्क में आई हूं तबसे मुझे जीवन जीना आ गया है।**

मैं खाक का जर्रा थी और क्या थी मेरी हस्ती,
मैं थपेड़े खा रही थी जैसे भंवर में कोई कश्ती।
दर दर भटक रही थी इस जिन्दगी से पहले,
मुझे कौन पूछता था तेरी उनकी बन्दगी से पहले।

और इससे आगे–
यह सब तुम्हारा करम है मेरे आका,
जो बात अब तक बनी हुई है।
मैं इस करम के कहां थी काबिल,
यह तो हुजूर की बंदा परवरी है।
जितना दिया सरकार ने मुझको,
इतनी मेरी औकात नहीं।
ये तो करम है मेरे आका का,
वरना मुझमें तो कोई ऐसी बात नहीं।
मेरे जीवन को चमन बनाने वाले मेरे आका तुझको
कोटि–कोटि नमन। मै कैसे तेरा गुनगान करूं?

जो करे तेरी करूणा का बयां, मेरे पास अलफाज नहीं,
जो गाए तेरी कृपा के तराने, ऐसा तो कोई साज नहीं।
तेरे चरणों में आकर, उदास जीवन हर्षाया है,
उसका कोई हिसाब नहीं, जो प्यार आपसे पाया है।
और अंत में–
तेरे चरणों में हो जाये बसर यह जिंदगी।
यही पहली तमन्ना है और यही आखिरी।।

पीनू दत्त
फरीदाबाद
(वर्तमान पता इंग्लैंड)

श्री प्रेम सुख, बल्लभगढ़ के विचार अपने गुरू हुजूर शब्दानन्द जी के प्रति

मण्डलाकारम् अखण्डम् व्यापतम् नित्यम् सदा।
व्याप्तम् चराचर मध्यम् व्याप्कम् नित्यम् सदा।।
तुम यहां हो तुम वहां हो, गुप्त और प्रकट हो तुम।
घट में हो तलपट में हो, ओघट में हो जगघट हो तुम।।
तुम ही निर्गुण ब्रह्म, धारा रूप जग उद्धार को।
तारने आए सगुण के, भाव में संसार को।।
जैसी हमको आज्ञा हो, हमको वह स्वीकार है।
तुम हमारे हम तुम्हारे, तुम ही से उपकार है।।
सच्चिदानन्दम्, अनूपम् अद्भुतम् मुनिनायकम्।
अद्वितीयम्, एकम्, एकमें, जीवजन्तु सहायकम्।।
भक्ति दीजे पावनी, चरणों में अपने लीजिये।
दास को जब अपना बनाया, अब इसे अपना लीजिये।।

एक दिन मैं हुजूर शब्दानन्द जी महाराज जी से मिलने अपने मित्र श्री विरेन्द्र के साथ दुर्गापुर गया। हम दोनों ने महाराज जी को माथा टेका और बैठ गये। थोड़ी देर बाद जब मैंने महाराज जी से कहा कि महाराज जी वैसे तो सब ठीक–ठाक चल रहा है लेकिन कभी–कभी मन डांवांडोल हो जाता है। महाराज जी मुस्कराकर बोले–'भक्ति श्रद्धा भाव से जो गुरू का ध्यान करते हैं उनके अंदर गुरू का प्रेम और विश्वास अपने आप बढ़ जाता है और फिर मन डांवाडोल नहीं होने पाता। उस समय मैं नया–नया इस मार्ग पर आया था। अतः गुरूदेव की बात को पूरी तरह समझ नहीं सका। किसी ने ठीक ही कहा है–

संत की भाषा अटपटी, झटपट लखे न कोय।
जो इसको झटपट लखे तो चटपट मुक्ति होय।।

अब मैं महसूस करता हूं कि गुरू का प्रेम शब्दों में बांधा नहीं जा सकता, और न ही गुरू कृपा का ऋण कभी चुकाया जा सकता

है। गुरू की समझ तो मुझे अभी तक भी पूरी तरह से नहीं आई है, लेकिन हां! अब गुरू की उंगली पकड़ कर चलने लगा हूं और उन्हें सर्वेसर्वा जान कर धीरे धीरे आगे पग बढ़ रहा हूं। उस दिन मेरा मित्र महाराज जी के सामने अचानक रोने लगा (उसे रोने में आनन्द आता है) तो हुजूर शब्दानन्द जी महाराज बोले–

आंसू बहने देना बेइंतहा, तोड़ कर सब्र का बांध,
ठंडी न पड़ने देना जिगर में इश्क की आग।
मन सुलगता रहे, तड़पता रहे, याद करता रहे,
इस आग के खेल से ही होता है मुरीद बेदाग।।

कुछ देर बाद उन्होंने हम दोनों से कहा–आज हमें एक खरा सौदा करना है। तुम अपना सब कुछ मुझे दे दो और जो मेरा है, वह तुम ले लो। अर्थात् अशांति के बदले शांति, घबराहट के बदले निर्भयता तथा याद के बदले दया ले लो। अपना सारा विष मुझे दे दो और मुझसे अमृत रस ले लो। अपनी बेचैनी और मन की चंचलता मुझे दे दो और बदले में मन की एकाग्रता मुझसे ले लो। है कोई ऐसा सद्गुरू आज के युग में जो ऐसा खरा सौदा अपने शिष्यों के साथ करके उन्हें सहज रूप में ही जीवन मुक्ति के मार्ग की ओर ले जाता है।

एक सतसंग में उन्होंने फरमाया कि मनुष्य चाहे जितना भी चतुर हो, पर जो धन या वस्तु उसके भाग्य में नहीं है, उसे वह सम्यक् प्रयत्न करके भी प्राप्त नहीं कर सकता और जो उसके भाग्य में है उसे कोई उससे वंचित नहीं कर सकता। इसलिए हमेशा ईश्वर की रजा में राजी रहकर, संतोषपूर्वक जीवन जीना सीख लेना चाहिए।

मुझको उन्होंने इशारों–इशारों में कहा था कि तुम नौजवान हो धन खूब कमाओ, लेकिन भ्रष्ट तरीके मत अपनाना। हक–हलाल की कमाई से तुम अपना और परिवार का पालन करो और उसमें से कुछ अंश दान–पुण्य में भी लगाया करो। धन की लालसा को अपने ऊपर हावी मत होने देना, इसे जीवन का सार मत समझ बैठना।

जीवन का सार तो गुरू को धारण करके, गुरू आज्ञा में रहकर अपने आप में खो जाना है। उन्होंने आगे कहा–

छिन ही चढ़े छिन ही उतरे सो तो प्रेम न होय,
अघट प्रेम पिंजरे बसे प्रेम कहावे सोय।

अब मेरी समझ में कुछ–कुछ आने लगा है कि–

गुरू समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरू दीन्ही दान।।

बल्कि गुरू तो तीन लोक की सम्पदा से भी अपने शिष्य को छुड़ाकर नाम का अनमोल रत्न अर्थात् सत्ज्ञान का मालिक बना देता है। जिस प्रकार नदी का प्रवाहित जल खेतों को सींच देता है, उसी प्रकार सद्गुरू भी अपने ज्ञान–जल से शिष्य के ह्रदय क्षेत्र को सींच देते हैं। उसके भीतर उस परम प्रकाश को प्रकट कर देते हैं। लेकिन किसके अन्दर, उसके अन्दर जो गुरू पर श्रद्धा और विश्वास रखते हैं।

भाव के भूखे हैं गुरू और भाव ही इक सार है।
भाव से जो उनको भजे तो, भव से बेड़ा पार है।।

अब तो गुरू की ऐसी कृपा हो रही है कि **'राह भी वही है, राही भी वही है।'** अब मेरा मन हर समय यही कहता है–

सब सौंप दो प्यारे प्रभु को, सब सरल हो जाएगा।
चिंता सभी मिट जाएंगी और मन विमल हो जाएगा।।

अब जीवन को बस! यही एक मात्र ध्येय है कि–

सद्गुरू के चरणों में अपना सर्वस्व लुटाना है,
बाधाओं से लड़ना है और गुरू का प्यार पाना है।
दस्तूर पुराना दुनिया का सच का देती साथ नहीं,
साथ जो देना चाहे उसका बढ़ने देती हाथ नहीं,
काल चक्र खुद को दोहराये हमको न घबराना है,
सद्गुरू के चरणों में हमको अपना सर्वस्व लुटाना है।

कभी–कभी गुरू भी अपने शिष्य की परीक्षा लेता है। लेकिन वे बिरले ही शिष्य होते हैं जो उनकी परीक्षा में सफल हो पाते हैं।

इसका कारण यह कि जब जीव को माया भरमाती है तो गुरू के सहारे बचा जा सकता है, लेकिन अगर गुरू ही हमें भरमाने का खेल खेलें तो फिर कोई कैसे बचे? अब मुझे कुछ–कुछ समझ आ गई है कि 'गुरू देव आप दिखने में तो मनुष्य जैसे लगते हो, लेकिन मनुष्य नहीं हो, आप तो अखिल भुवन के स्वामी हो। हे प्रभु! आपकी लीला देखकर तो ब्रह्मादिक भी भ्रमित हो जाते हैं फिर मुझ जैसे तुच्छ प्राणी की तो बिसात ही क्या है? मुझे क्षमा करें।'

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज तो अपने जीवन काल में ही जीवन–मुक्त हो चुके थे अर्थात् वे देह में रहते हुए भी विदेह थे। जब दुर्गापुर रहते हुए उन्होंने 20–22 दिन की घोर तपस्या की तो उनका भौतिक शरीर जो पहले ही बहुत कमजोर था और अधिक जर्जर हो गया लेकिन उन्होंने शरीर की कोई परवाह नहीं की। किसी ने ठीक ही कहा है–

जिन्हें हो गई है हासिल सच्ची इबादत खुदा की,
वो जिन्दगी तो क्या मौत की भी परवाह नहीं करते।

अन्त में मैं अपने श्रद्धेय परमतत्वाधार सद्गुरू के चरणों में ये पंक्तियां प्रस्तुत करके अपनी वाणी को विश्राम देता हूं।

आज तक न मैंने कुछ मांगा पर आज मांगता हूं,
तेरे चरणों में अपना सर्वस्व सौंपना मांगता हूं।
मेरी मैं मेरा अस्तित्व मेरा मान मेरा सम्मान,
सब ले लो मेरा मन, सामर्थ्य और अभिमान।
अब कोई मांग नहीं, न ही कोई आकांक्षा मेरी,
जो कुछ है वो तेरा स्वामी, मेरी यह रूह भी तेरी।
तू चाहिए तेरा प्यार चाहिए, तेरा दीदार चाहिए,
अब तेरे सिवा मेरे गुरू देव, मुझे कुछ नहीं चाहिए।

गुरूदेव सबका कल्याण करें!

प्रेम सुख,
बल्लबगढ़

"आदि अंत का मर्म"–'शब्दानन्द'

नरेन्द्र पाल सिंह त्यागी, मेरठ

यह एक ध्रुव सत्य है कि 'शब्दानन्द' जी महाराज के बारे में न कुछ कहा जा सकता है और न कुछ लिखा जा सकता है क्योंकि वे व्याख्या और वर्णन से परे हैं। जो भी शब्द या विचार उनकी व्याख्या या वर्णन के लिए प्रयोग किये जायेंगे वे जिस स्रोत से आयेंगे वह स्रोत सीमित होगा और परिणामस्वरूप वह व्याख्या या वर्णन भी अनिवार्यरूप से सीमित ही होगा जबकि 'शब्दानन्द' जी महाराज तो शब्दातीत हैं, अनादि और अनन्त हैं। इस विषय में दाता दयाल जी महाराज का एक शब्द निम्न प्रकार है–

मंगलम् गुरू शब्द रूप, अनाम नाम प्रकाशनम्।
मंगलम् शब्दार्थ शब्दाधार शब्द निवासनम्।।
गुप्त अपने आप में, जब अलख अगम अनाम आप।
जब प्रगट आनन्द ज्ञानाकार, और सत धाम आप।।
साज संत समाज मंगल, काज जीव उद्धार को।
आपने धारण किया है, परम संत अवतार को।।
आप हैं आधार सब के, आपके आधार सब।
संग देकर सत्त का सतसंग में, जीव अधीन को।
सिंधु सद्गति से मिलाया, जीव रूपी मीन को।।
सैन बैन का आसरा, सतसंग द्वारा दान दे।
शब्द योग सिखाया अनहद, धाम पद निर्वाण दे।।
धन्य सतगुरू राधास्वामी, पार भव से कीजिए।
भक्ति युक्ति योग जुगती, ज्ञान शक्ति दीजिए।।

अगर कोई जिज्ञासु या महात्मा वास्तव में 'शब्दानन्द' जी महाराज को जानना चाहता है तो उसे सबसे पहले अपनी खोपड़ी के भीतर घुंसकर या धंसकर उस जगह या स्थान की खोज करनी चाहिए जहां मानवी और ईश्वरीय शक्तियों का मिलन बिन्दु या केन्द्र है। बस उस स्थान पर अपनी तवज्जह को केन्द्रित करना है और इसकी विधि कोई शब्द सनेही संत ही बता सकता है। उसकी

संगत और उसके मार्गनिर्देशन में रहकर लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है अन्यथा जन्मजन्मातरों का भटकना और आवागमन सुनिश्चित है।

'शब्दानन्द' तत्व को समझने के लिए जिज्ञासु को पहले यह जान लेना आवश्यक है कि बाहर और भीतर जहां कहीं भी तंरग या लहर होती है वहां बहाव या गति का होना अनिवार्य है। और जहां गति होती है वहां 'शब्द' या 'आवाज' भी अवश्य होती है। इसके साथ ही गति की एक विशेषता और होती है कि वह गोलाकार या वृत में चलती है, घूमती है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'आवाज' या शब्द का सिद्धांत गोलाई में कार्य करता है। 'आवाज' या वृत ऊपर भी उठता है और नीचे भी गिरता है। यह 'आवाज' ही इस प्रकृति का आधार है। इस प्रकृति में कोई भी जगह ऐसी नहीं जो 'शब्द' या 'आवाज' से खाली हो। फिर 'शब्दानन्द' कहां नहीं हैं?

वैज्ञानिक भी संतो की भाषा में कहते हैं (संत भी वैज्ञानिकों की भांति खोज करते हैं–वैज्ञानिक बाहरी प्रयोगशाला में प्रयोग करते हैं और संत अंतरी प्रयोगशाला में प्रयोग करते हैं) कि 'आवाज' गुप्त भी होती है और प्रकट भी होती है। प्रत्येक चीज 'आवाज' ही है। जब 'शब्द' गुप्त रहता है तो अनामी होता है और जब 'शब्द' प्रकट होता है तो रूप धारण कर लेता है और उस रूप का नामकरण भी होता है। यह 'शब्द' सब कुछ है, सबका आदि और अन्त है। यह 'शब्द' ही सृष्टा या सृजन कर्त्ता, सृष्टि या सृजन का कार्य और सृजित या सृजन की हुई सामग्री (Creator, Creation and Creatures)है। यह 'शब्द' स्वतन्त्र भी है और एक दूसरे पर भी निर्भर भी है।

मनुष्य के अंदर अनेक प्रकार के शब्द होते हैं। उनमें से मुख्य वह धुन है जो शब्दों के द्वारा ओंठ, जुबान और दांत की मदद से, मुख से प्रतिध्वनित होती है। संत मत में या राधास्वामी मत में शब्द को दो भागों में बांटा जाता है–वर्णात्मक और धुनात्मक। जिस अवस्था की बात हम 'शब्दानन्द' जी के बारे में कर रहे हैं उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए हमें वर्णात्मक शब्दों का नहीं अपितु धुनात्मक शब्द का ही सहारा लेना लाजिमी है।

यह धुनात्मक शब्द अपने आप में 'नाम' भी होता है और 'रूप' भी होता है। जब एक जिज्ञासु अपने गुरू के मार्ग–दर्शन में इस नाम का अभ्यास करता है तो उसे इन नाम की ध्वनि अंतर में गुंजती हुई सुनाई देती है। वह उत्सुकता वश उस ध्वनि की ओर अंतर में खिंचता चला जाता है और उस केन्द्र तक पंहुच जाता है जहां से यह ध्वनि निकलती है। यही ध्वनि अंदर में सच्चा मार्ग दर्शक बन जाती है और अशब्द गति में पहंचा देती है।

सावधान! इस ध्वनि को शब्द या विचार से तुलना न करें। सच्चाई तो यह है कि यह ध्वनि 'ईश्वरीय' है। यह ध्वनि अंतर में केवल धुनात्मक होती है, इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस ध्वनि को केवल शान्त रहकर ही सुना जा सकता है। हुजूर मानव दयाल जी अक्सर कहा करते थे–

'जिंदगी का साज भी क्या साज है,
बज रहा है फिर भी नहीं आवाज है।'

इस सृष्टि में और सृष्टि से परे ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है जो इस 'शब्द' या 'ध्वनि' से ज्यादा ताकतवर हो। यह ध्वनि ईश्वर का संगीत है, दैवीय संगीत है। बाइबिल में लिखा है Word was God and God was the Word.

यों तो यह शब्द सभी के अंदर है, लेकिन सभी इससे बेखबर हैं इसलिए उनकी यह हालत होती है–

'वह एक बूंद जो फैलाव में समुन्दर थी।
उलझ के रह गई मिट्टी के चन्द जर्रों में।।'

लेकिन कुछ ऐसी भी महान आत्माऐं होती हैं जिन्हें अपने आपको जानने की होश पैदा हो जाती है और जब वे इस तड़फ को बढ़ाते जाते हैं तो उनको पथ–प्रदर्शक भी मिल जाता है। जो अपने पथ–प्रदर्शक के मार्ग–दर्शन में निष्काम–भाव से लगे रहते हैं, उन्हें एक दिन मंजिल भी मिल जाती है। जिनको मंजिल मिल जाती है बस! वे ही 'शब्दानन्द' का अर्थ सही में समझ पाते हैं।

नरेन्द्र पाल सिंह त्यागी,
बनवारीपुर, मेरठ

प्राणों का है प्राण पिता तू!

हजारों साल धरती अपनी बेनूरी को रोती है,
जमीं पर तब कहीं पैदा होता है दीदवर कोई।

जी हाँ! 23 अक्टूबर, 1923 को गोविन्द गेह, ग्राम मुबारकपुर, जिला गाजीपुर, उ0प्र0 में परम पूज्य श्री गोपाल नारायण राय (पुत्र श्री गोविन्द प्रसाद राय) एवं श्रीमती भाग्यवती देवी के चौथे पुत्र के रूप में ऐसे ही एक दीदवर शब्दानन्द का जन्म हुआ था। आपके पिता बाबू गोपाल नारायण राय पोस्ट मास्टर थे तथा हुजूर दाता दयाल जी महाराज के अनन्य भक्त थे। आपकी माता जी की भक्ति भी बेजोड़ थी। बाबू गोपाल नारायण जी हृदय से संत थे, परन्तु रहन–सहन से राजसी ठाठ बाट झलकता था। आप बहुत दिनों तक इलाहाबाद में पोस्टमास्टर रहे। पोस्ट आफिस में ही ऊपरी मंजिल पर आपके रहने के लिए घर था। पिताजी का अधिकांश बचपन अपने माता–पिता, पांच भाइंयों तथा दो बहनों के साथ वहीं बीता। हुजूर दाता दयाल जी जब भी इलाहाबाद जाते, यहीं रूकते थे। इस तरह से दाता दयाल जी का सानिध्य एवं आशीष पूरे परिवार को बराबर मिलता रहता था। एक बार बाबू गोपाल नारायण जी के किसी पत्र के जवाब में हुजूर दाता दयाल जी ने उन्हें लिखा–**'तारूं–तारूं तार दूं, तारूं निस्संदेह। तेरी देह की क्या कहूँ, तारूँ कुल और गेह।।'** इस प्रकार उनके पूरे कुल परिवार की जिम्मेदारी उन्होंने ले रखी थी।

मेरे पिताजी कुल आठ भाई–बहन थे, परन्तु अपने पैतृक निवास, गोविन्द गेह, मुबारकपुर में सिर्फ पिताजी का ही जन्म हुआ था। अतः पिता जी का मुबारकपुर से अन्त तक विशेष लगाव रहा। आपने वहां एक सत्संग केन्द्र, 'मुबारक धाम' बनाने की जिम्मेदारी मुझे सौंपी है। 'गोविन्द गेह' (मुबारकपुर) एक बहुत ही सुन्दर हवेली थी। हवेली के ठीक सामने बड़ा सा आम का बगीचा था जिसमें खूबसूरत चबूतरे एवं रास्ते बने हुए थे। अब सिर्फ अवशेष ही बचे हैं।

पिताजी ने मुझे बताया था कि उनकी स्कूली शिक्षा बलिया से ही शुरू हुई, क्योंकि उस समय मेरे बाबा बलिया में ही नियुक्त थे। फिर कुछ दिन जिला बांदा में रहे, उसके बाद गाजीपुर आ गये। गाजीपुर में गवर्नमेन्ट स्कूल, गोरा बाजार में आपका कक्षा तीन में दाखिला हुआ। इसके बाद आप लोग इलाहाबाद चले आये। यहां अग्रवाल विद्यालय में आपका कक्षा चार में दाखिला हुआ और आपकी शिक्षा–दीक्षा सुचारू रूप से चलने लगी।

माता–पिता के प्यार और दाता दयाल के आशीष से सिंचित परिवार सुख से रह रहा था। बाबा गायों के शौकीन थे। तीन दूधारू गायें तो हमेशा रहती थी। घर में नौकर चाकर थे, चौकीदार था। बाबा घोड़ा गाड़ी पर कमर में रिवाल्वर लटका कर चलते थे तथा पीछे राईफल लेकर उनका अर्दली साथ होता था। घर के तीसरी मंजिल पर छत थी जहां बाबा ने मिट्टी डलवाकर अखाड़ा बनवाया था। एक सेवक, जो पहलवान था, पिताजी और उनके सभी भाइयों को उस अखाड़े में कुश्ती लड़वाता था।

परन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। आप जब कक्षा सात में थे तभी आपके पिता बाबू गोपाल नारायण जी का (1937–38 में) स्वर्गवास हो गया। परिवार अर्श से फर्श पर आ गिरा। फिर इलाहाबाद में ही मुट्ठीगंज में किराये के मकान में पूरा परिवार रहने लगा। 1941 में राजकीय इंटर कालेज इलाहाबाद से आपने किसी तरह हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। मेरे संज्ञान में पिताजी अकेले ऐसे व्यक्ति दिखते हैं, जो कला की लगभग हर विधा में बराबर की दखल रखते थे। संगीत, कला, लेखन, कविता, गजल, ड्रामा, न जाने किन–किन कलाओं में आप पारंगत थे। परन्तु बचपन से ही आपके अंतस में एक अध्यात्म का संमदर भी था, जिसमें आपके भीतर बह रही कला की सारी नदियां जाकर समाहित हो गयीं।

संगीत आपका प्रथम प्रेम था। हाई स्कूल में आप संगीत लेना चाहते थे। परन्तु आर्थिक कठिनाईयों के कारण संगीत की औपचारिक शिक्षा आपके लिए संभव न हो सकी। संगीत छोड़कर आपको कला का अध्ययन करना पड़ा। परन्तु इसमें भी आपने हर

ऊँचाईयों को छूआ।

जब पिताजी हाईस्कूल में थे तब एक दिन सुबह–सुबह मेरी दादी ने इन्हें जगाया और कहा कि मुझे पता चला है कि दाता दयाल जी के उत्तराधिकारी परम दयाल जी महाराज इलाहाबाद में आये हुए हैं। पता लगाओ वो कहां ठहरे हैं और हमें दर्शन कराओ। पिताजी साइकिल लेकर निकल पड़े, और हर होटल, हर धर्मशाला में घूमते रहे। आखिर एक धर्मशाला में परम दयाल जी मिल ही गये। पिताजी वापस घर गये और तांगे पर अपनी माता जी को ले आये। माता जी (मेरी दादी) ने परम दयाल जी के चरणों पर सिर रखा और विनती की कि आप धर्मशाला में न रहें, मेरे घर चलें। परम दयाल जी ने कहा, दयाल की माई (वो उन्हें यही कह कर बुलाते थे, क्योकि दाता दयाल जी उन्हें माई कहते थे), मेरे साथ कई सत्संगी हैं, तुझे तकलीफ होगी। परन्तु दादी उन्हें अपने डेरे पर ले गयीं।

शायद यहीं से पिताजी पर परम दयाल जी की भक्ति का रंग चढ़ा। परम दयाल जी तो वापस पंजाब चले गये। परन्तु पिताजी की सुरत को खींच ले गये। अब पिताजी उन तक सशरीर पहुंचने की जुगत में लगे रहे। हाई स्कूल की परीक्षा पास कर ली। परन्तु होशियारपुर तक के किराये का सवाल था। अतः कानपुर पहुंचे। वहां रेलवे की भर्ती हो रही थी। किसी तरह बड़े बाबू से कहकर फार्म जमा कराया, प्रवेश पत्र हासिल किया और अगले दिन परीक्षा में बैठ गये। पास भी हो गये। सरकारी नौकरी ज्वाइन की। दो महीने की तनख्वाह इकट्ठी की और नौकरी छोड़कर चल पड़े होशियारपुर के लिए। पहली बार अकेले इतना लम्बा सफर। जेब में चन्द रूपये और सीने में मजबूत इरादे। होशियारपुर पहुंचे। परमदयाल जी के घर पहुंचे तो पता चला वो तो फिरोजपुर में हैं। घर में ताला बन्द है। परेशान खड़े रहे। एक लड़का उधर से गुजरा। उससे इन्होंने परम दयाल जी के बारे में पूछा। उसने बिना कोई जवाब दिये इनका बक्सा अपने कंधे पर उठाया और चल दिया। पिताजी पीछे चले। वो लड़का इन्हें परमदयाल जी के एक मित्र

के घर ले गया। उन मित्र महोदय ने पिताजी को रात में अपने यहां ठहराया और दूसरे दिन उन्हें फिरोजपुर भेजने की व्यवस्था कर दी।

तो इस तरह आपने फिरोजपुर में हूजूर परम दयाल जी के दर्शन किये। उन्होंने पहला सवाल पूछा, 'माँ से बता कर आये हो?' 'नही'। 'ये पोस्टकार्ड लो और पहले माँ को चिट्ठी लिखो।' फिर पूछा 'क्या चाहते हो?' 'आपकी सेवा।' कुछ दिन पिताजी उनके साथ रहे। फिर अस्वस्थ हो गये। अब इन्हें लगा कि कहीं परम दयाल जी महाराज को ही इनकी सेवा न करनी पड़े। तो ये वहां से चल पड़े। परन्तु चलने के पहले हुजूर ने इन्हें गुरूमंत्र दिया जिसे इन्होंने अपना नाम दान समझ लिया– **'जब तक विवाह न हो जाये, सिनेमा मत देखना' और 'माँ की सेवा करना।'** पिताजी हमेशा कहते थे, इन्हीं दो गुरूमंत्रों ने मेरा जीवन बना दिया।

वहां से लौटने के बाद पिताजी का जीवन संघर्ष शुरू हुआ। कुछ दिन नौकरी, फिर पढ़ाई, फिर नौकरी, फिर पढ़ाई। कुछ ऐसे ही जीवन चक्र चलता रहा। 1948 में कायस्थ पाठशाला, इलाहाबाद से इण्टरमीडिएट किया। 1949–1951 तक दो वर्ष महाबोधि इण्टर कालेज, सारनाथ में अध्यापन किया। 1951 में टाउन इण्टर कालेज बलिया में कला अध्यापक पद पर स्थायी रूप से कार्य भार ग्रहण किया। 1953 में आगरा वि0वि0 से प्राइवेट बी0ए0 पास किया। 1954 में विवाह हुआ।

टाउन इण्टर कालेज में अध्यापन के दौरान पिताजी को एक बार सूचना मिली की हुजूर परम दयाल जी महाराज का दिल्ली में सत्संग होना है। पिताजी दिल्ली पहुंच गये। वहां सत्संग के दौरान हुजूर ने फरमाया कि सत्संगियों, आज तुम अपने मन में जो चाहो संकल्प कर लो। मैं वरदान देता हूँ कि तुम्हारा संकल्प पूरा हो जायेगा। पिताजी ने तुरन्त संकल्प किया, 'मुझे आपकी सेवा चाहिए।' सत्संग के बाद हुजूर भोजन करने गये। वहां उन्होंने दही की इच्छा जाहिर की। पिताजी दरवाजे के बाहर से सुन रहे थे। वो दौड़कर गये और दुकान से दही लाये। हुजूर ने कहा, 'शब्दानन्द, तू मेरे लिये दही लाया है।' उन्होंने दो चम्मच दही खाकर बाकी

पिताजी को दे दी और कहा, तूने मेरी सेवा का संकल्प लिया है। जा तेरा संकल्प पूरा होगा। थोड़ा समय लगेगा, पर निराश न होना।

1984 में पिताजी सेवा निवृत्त हुए। परन्तु उसके पहले ही परम दयाल जी महाराज ने चोला छोड़ दिया। पिताजी घोर निराशा में डूब गये। परन्तु कुछ ही दिनों बाद उन्हें सूचना मिली की अमरीका से मानव दयाल जी महाराज कुछ अमरीकियों के साथ बनारस आये हुए है। पिताजी उनसे मिलने बनारस पहुंच गये। मानव दयाल जी महाराज ने इन्हें देखते ही कहा कि, मिस्टर! आपको मेरे साथ बहुत काम करना है। इस तरह परम दयाल जी महाराज का दिया हुआ वचन पूरा हुआ। पिताजी मानव दयाल जी महाराज के साथ होशियारपुर गये तो आखिरी सांस तक उनकी सेवा में लगे रहे। उसके बाद का उनका जीवन तो आप सबके सामने है।

तो ऐसी ही कुछ थी मेरे प्राणों से भी प्रिय पिता की जीवन गाथा। क्या महत्वपूर्ण दिखता है इसमें! मेरे पिता बहुत साधारण इंसान थे। साधारण पढ़ाई–लिखाई, साधारण नौकरी, साधारण रहन–सहन, साधारण बुद्धि। परन्तु इन सब साधारण बातों में कुछ असाधारण छिपा हुआ था। वो था–असाधारण इंसानियत, असाधारण ईमानदारी, असाधारण विश्वास, अपने मालिके कुल पर। असाधारण सेवा भाव। और असाधारण शिष्यत्व एवं समपर्ण। उनके जीवन चरित्र का बारीकी से अध्ययन करने पर मुझे महसूस होता है कि गुरू बनना तो आसान है, परन्तु शिष्य बनना कितना कठिन? और मेरे पिताजी एक पूर्ण शिष्य थे। तन, मन, धन–सब कुछ गुरू का। अपना कुछ नहीं। गुरू की सेवा में सिर फट गया तो फट गया। सेवा पूरी होने के बाद ही इलाज। गुरू के साथ रिक्शे पर जाना है, तो नीचे बैठ गये। गुरू के साथ प्लेटफार्म पर है, तो नीचे बैठ गये। होशियारपुर में महाराज जी के साथ चौदह पन्द्रह वर्ष रहे होंगे। और हमेशा महाराज जी के भोजन के बाद उनकी थाली में जो शीत प्रसाद बचता था, वही आपका भोजन था। आज बेटी की सगाई हुई। रात में बिना किसी आरक्षण के 70 वर्ष की उम्र में जनरल डिब्बे

में बैठकर होशियारपुर को चल दिये। क्योंकि गुरू से कहा है कि कल तक पहुंच जाऊंगा। सो चल दिये। हमेशा ऐसे ही आते–जाते थे। उन्होंने अपने मालिक से एक ही चीज तो मांगी थी। सेवा, सेवा और सेवा। मालिक उन्हें दोनों हाथों से सेवा का अवसर लुटा रहे थे। और पिताजी अपने शरीर के हर सांस को उस सेवा में खपा रहे थे। सेवा के अतिरिक्त स्वप्न में भी कोई इच्छा पैदा नहीं हुई। जब हुजूर मानव दयाल जी का चोला छूटा तो मैं वहां जा नहीं सका था। मैंने फोन से पिताजी से पूछा, 'अब क्या करना है आपको?' पिताजी ने कहा, 'बस महाराज जी का श्राद्ध पूरा हो जाये, मेरा काम समाप्त हो जायेगा। मैं अगले ही दिन बलिया आ जाऊँगा।' उस समय तक उन्होंने ये कल्पना भी नहीं की थी कि कोई धाम बनेगा और मैं वहां गुरू की भूमिका निभाऊँगा। परन्तु विधि को कुछ और ही मंजूर था। अभी इनकी सेवा किसी और रूप में ली जानी थी। सो धुरपद धाम बना। और पिताजी सत्संगियों की सेवा में फिर जुट गये।

लोगों के मन में सवाल उठ सकता है। इतने दिनों की सेवा से क्या पाया इन्होंने? मुझे विश्वास है कि अध्यात्म का जो वास्तविक लक्ष्य होता है, वो इन्होंने पा लिया। आखिरी दिनों में ये हम लोगों से हमेशा एक शब्द पढ़ने को कहते थे– 'एक पुरूष अजायब पाया। कोई मर्म न उसका गाया।।' और फिर इसी पर सत्संग देते थे। महासमाधि में जाने के एक हफ्ते पहले तक इन्होंने इस पर मुझे सत्संग दिया। और इस शब्द का सार यही समझाते थे, कि **ये सारा ब्रह्माण्ड एक पुरूष है, एक तत्व है, यही राधास्वामी है। हम सब इसी के हिस्से हैं। इस तरह से हम सभी एक ही हैं। उनकी ये बात पूरी तरह से विज्ञान–सम्मत है।**

पिताजी ने मुझसे बहुत पहले ही कह रखा था कि मैं आखिरी समय में तुम्हारे पास ही रहूंगा। 2010 में जब घई अस्पताल, फरीदाबाद में पिताजी लगभग कोमा में थे, तो मेरा दिल रो पड़ा। मुझे लगा मैं, पिताजी की इच्छा पूरी नहीं कर पाऊँगा। होश में आने पर मैंने उनसे कहा–'बाबूजी मैं कुछ मांगना चाहता हूँ।

दीजिएगा?'' उन्होंने कहा, मांगों! मैंने कहा मैं आपके साथ पांच वर्ष रहना चाहता हूँ। उन्होंने कुछ सोचा। फिर कहा, 'मैं' तुम्हारे साथ छः वर्ष रहूंगा।' कुछ लोगों के मना करने के बावजूद हम लोग उन्हें लेकर एस्कार्ट अस्पताल ले आये। मालिक ने हम परिवार वालों की और सभी प्रेमी सत्संगियों की प्रार्थना सुन ली। पिताजी स्वस्थ हो गये। हम लोग उन्हें उन्हीं की इच्छानुसार बलिया ले आये। वो प्रसन्नता पूर्वक बलिया आ गये। **धुरपद धाम के प्रति अपना सारा लगाव वहीं छोड़ आये। जिस धाम के प्रति दस वर्षों तक अपना तन–मन सब अर्पित कर रखा था, एक झटके में उसे छोड़ दिया। इसके पीछे आपका संदेश यही था कि अपनी सबसे प्रिय वस्तु से भी कोई आसक्ति मत रखो।**

पिताजी का बलिया अपने घर वापस आना हम परिवार वालों पर उनका बहुत बड़ा अनुग्रह था। विशेष रूप से मेरे ऊपर। मुझे ऐसा लगता है कि वो यहां आकर मेरा जीवन सुधारना चाहते थे, क्योंकि मेरे प्रति उनका विशेष प्रेम रहता था। वो सारे दिन मुझे 'दयाला प्यारे' कह कर बुलाते रहते थे। मगर अफसोस कि मैं स्वयं को उनकी ये कृपा प्राप्त करने योग्य सुपात्र नहीं बना सका। उन्होंने मेरी कई बार परीक्षा ली, और मैं हर बार फेल हो गया। हुआ यूँ कि आखिरी दिनों में उन्होंने अत्यधिक गुस्सा और जिद का एक आवरण ओढ़ लिया था। मुझे पता था कि दिल से तो वो अपने दुश्मन से भी प्रेम ही करते हैं और मुझे तो वो अपने सिर पर बिठा कर रखते थे। ये जानते हुए भी मैं कभी–कभी उनके गुस्से को सहन नहीं कर पाता था। मुझे भी गुस्सा आ जाता था। अपनी इस कमजोरी पर मैं उस वक्त भी दिल से रोता था, और आज भी रोता हूँ। तथा इस जघन्य अपराध के लिए मैं अपनी माताजी, परिवार के सभी सदस्यों तथा सभी सत्संगी भाई बहनों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

अपने बलिया प्रवास के दौरान पिताजी ने मुझे कई बार अपना विराट रूप दिखाया। एक बार मैं उनके कमरे में अपनी एक भूल पर आत्म ग्लानि से भरा हुआ अत्यधिक दुःखी मन से बैठा हुआ था। तब उन्हें आंखों से बिल्कुल भी दिखायी नहीं देता था। उन्होंने

मुझे नाम लेकर बुलाया और अपनी गोद में ले लिया। और कहने लगे, तुमने कौन सा ऐसा अपराध किया है, जिसके लिए तुम अपने आप को इतनी सजा दे रहे हो। जैसे मेरे मन की सारी बात वो पढ़ रहे थे, मेरे बिना कुछ बोले।

दिसम्बर 2012 में भी उनकी तबीयत बहुत खराब चल रही थी। 29 दिसम्बर, 2012 को रात्रि 9 बजकर 10 मिनट पर पिताजी गहरी अचेतन अवस्था में थे। इसी अचेतन अवस्था में उनके मुख से कुछ शब्द निकलने लगे। मैंने तुरन्त कागज कलम उठाकर उन शब्दों को लिखा। वो शब्द इस प्रकार थे–

'हमारी समझ एक ऐसी जगह पहुंचकर रूक जाती है जहां से विश्वास होता है कि सभी एक ही हैं, और सभी उस एक अविनाशी पर आकर समाप्त होते हैं। एक विश्वास...। एक जगह पहुंचकर हम सब एक हो जाते हैं। एक ही में मिलकर एक बन जाते हैं। सब कुछ एक ही है।'

मैं समझता हूँ कि पिताजी के ये शब्द उस मंजिल का पता बताते हैं, जहां भविष्य में अध्यात्म और विज्ञान दोनों को पहुंचना है और पहुंचकर एक हो जाना है। पिताजी के ये शब्द शायद उनके जीवन भर के आध्यात्मिक साधना का निचोड़ है। एक और सीख पिताजी बराबर दिया करते थे। वो ये कि धरती पर कोई हिन्दू, मुसलमान, इसाई नहीं है। सभी मनुष्य हैं और बस मनुष्य।

जब तक शरीर में थोड़ी सी भी ताकत थी, पिताजी ने अपने जीवन का हर क्षण लिखने–पढ़ने, सुमिरन–ध्यान तथा लोक कल्याण हेतु समर्पित कर रखा था। भोजन और आराम उन्हें न्यूनतम चाहिये था। शब्द पाठ, शब्द सुनना और राधा स्वामी नाम का सुमिरन जीवन के आखिरी दिन तक जारी रहा। शब्द सुनने की इच्छा उनकी हमेशा अतृप्त रहती। हम लोग सुनाते–सुनाते थक जाते। वो सुनते सुनते कभी नहीं थकते थे।

पिताजी ने मुझे छः साल की सेवा का वरदान दिया था। परन्तु चार वर्ष पूरे होने के पहले ही उन्होंने विदाई की तैयारी कर ली। क्योंकि उन्हें एहसास होने लगा था कि मेरा ये सबसे छोटा पुत्र

मुझसे प्रेम तो अथाह करता है, किन्तु कभी कभी मेरी सेवा करने से घबरा भी जाता है। हालांकि परिवार के अन्य सदस्य, विशेष रूप से मेरे बड़े भाई और भाभी, बिना घबराये हुए उनकी सेवा में निरन्तर लगे रहते थे। 23 फरवरी, 2014 से भोजन छूटने लगा। मार्च शुरू होते ही उठना, बैठना बन्द हो गया। 7–8 मार्च से भोजन–पानी दोनों बिल्कुल छूट गया। डाक्टर ने ड्रिप लगाई। 12–13 दिन ड्रिप पर ही रहे। मैंने मन ही मन इच्छा की, 'पिताजी होली बिता लीजिये। 17 मार्च को होली थी। होली की सुबह आपने कहा, 'तीन दिन ऐसे ही और बिता देंगे।' 18 मार्च को सांस लेने में परेशानी होने लगी। एम्बुलेन्स से अस्पताल ले गये हम लोग। डाक्टरों ने भर्ती नहीं किया। वापस ले आये। फिर उसी दिन शाम को दूसरे अस्पताल ले गये। वहां नेब्यूलाइजेशन और कफ का सक्शन किया गया। थोड़ा आराम हुआ। फिर घर वापस ले आये। परन्तु 19 मार्च को फिर बहुत कफ बन गया। मेरी इच्छा पुनः अस्पताल ले जाने की थी। परन्तु बार–बार अस्पताल ले जाने में उन्हें बहुत तकलीफ हो रही थी। डाक्टरों का कोई सकारात्मक जवाब भी नहीं था। रात में तय हुआ कि 20 को सवेरे ही पुनः अस्पताल ले चलेंगे। जो 12–13 दिनों से अन्न जल कुछ नहीं ले रहे थे, 19 की रात को हम सब का मन रखने के लिए एक चम्मच खिचड़ी खा ली। राधास्वामी शब्द का उच्चारण किया। फिर सो गये। हम भी सो गये। माता जी और मेरी बहन जगी रहीं। **डेढ़ बजे रात में वो उसी एक अविनाशी से जा मिले। लगभग 91 वर्ष पहले जिस महान आत्मा ने गोविन्द गेह, मुबारकपुर से अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ की थी, वो 20 मार्च 2014 को ' गोपाल–गेह' बलिया में अपनी मंजिल पर पहुंच गयी।**

पिताजी का ये सानिध्य मेरे लिए आइना समान था, जिसमें मैंने अपने जीवन के दाग–धब्बों को स्पष्ट देख लिया। इन्हें साफ करने के लिए पिताजी मुझे नुस्खा भी बता गये। ईश्वर से प्रार्थना है कि मैं उनके इस अनमोल उपहार का लाभ उठा सकूं और जहां तक सम्भव हो, अपने दाग–धब्बे मिटा सकूं।

हुजूर गंजू जी महाराज, हुजूर रवि पंडित जी महाराज एवं सभी आचार्यों को हमारे पूरे परिवार का मत्था टेक एवं सभी सत्संगी भाई–बहनों को राधास्वामी।

दयालानन्द राय
'गोपाल गेह'
स्वामी विवेकानन्द कालोनी
तीखमपुर, बलिया

(विशेष –कहते हैं कि शेर का बच्चा शेर ही होता है। यह बात पशु–पक्षियों में तो अक्षरशः सही है। लेकिन जहां बात मानव के ऊपर आती है वहां अच्छे–अच्छे मनोवैज्ञानिक एवं समाज– सुधारक इस प्रश्न पर पूरी तरह सहमत होते प्रतीत नहीं होते। इसका कारण भी स्पष्ट है और वह यह कि मानव कर्म–भोग भोगने के साथ–साथ नये कर्म करने में भी स्वतंत्र है। यह स्वतन्त्रता अन्य प्राणियों को प्राप्त नहीं है। इतिहास में बहुत से ऐसे उदाहरण मिल जांएगें जिनमें सत्पुरूषों, महात्माओं और श्रेष्ठ पुरूषों की संतानें अपने पूर्वजों के आचरण के विपरीत चलीं। लेकिन इतिहास इसका भी गवाह है कि कुछ महापुरूषों की संतानें न सिर्फ उनके आदर्शों पर चलीं अपितु उनसे भी बेहतर साबित हुईं। जो आचरण आपने ऊपर परम पुरूष पूरन धनी हुजूर शब्दानन्द जी के कनिष्ठ पुत्र श्री दयालानन्द जी का पढ़ा उससे आप स्वयं ही अंदाज लगा सकते हैं कि एक संत का बच्चा संत ही होता है, यह उनके ऊपर पूर्ण रूपेण सही उतरता है। **सुधि पाठकों से एक नम्र निवेदन–** कृपया हर मानव स्वयं अपने अंदर झांकें और अपने आपसे पूछे कि जब शेर का बच्चा शेर होता है तो ईश्वर का बच्चा कौन होना चाहिए! यदि आपका जवाब सकारात्मक है, तो कृपया वैसा बनने की कोशिश करें। यदि किसी को ईश्वर का बच्चा बनने में कोई दिक्कत आ रही है तो संतसतगुरू वक्त से समय रहते समाधान करा ले, इससे पहले कि बहुत देर हो जाए।)

–प्रकाशक

आचार्या बहन रत्ना पंडित जी के विचार परमसंत हुजूर शब्दानन्द जी के विषय में

राजों के राजा महाराजाधिराज, योगियों के योगीराज परमतत्व के अवतार अद्वितीय, अवर्णनीय, आत्म–ज्ञान के सूर्य, आध्यात्मिकता की उच्च शिखर पर आसीन श्री शब्दानन्द जी के चरण–कमलों में सिर नवाकर उनकी ध्यान स्मृति में अपने कुछ श्रद्धा सुमन अर्पित करने का प्रयास करती हूं। अज्ञान रूपी महान मोह तम पुंज से प्रकाश रूप दर्शाने वाले जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी ऊँचे हमारे सतगुरू अजर, अमर, अक्षर तीन गुणों से परे रहने वाले थे। उनके चरणों की धूल सब प्रेमी भक्तों के समस्त कष्ट, सब विघनों में औषधि का काम करती थी। वे एक सिद्ध योगी थे। जिन की योग–साधना से इस असार संसार के सभी रोगों का नाश होता था। हमारे मालिके कुल एक अनमोल हीरा थे; जो अपनी दयादृष्टि से तांबें को सोना और सोने को पारस बना कर रख देते थे।

वे एक महान सीधे–सादे दया के सागर एक महान कवि, नाटककार, सूत्रधार और गायक भी थे। अपने समय में उनको सायगल के नाम से सुशोभित करते थे। वे परम दयाल जी के समय में पाठी भी रहे हैं। अपने गुरू माहराज श्री मानव दयाल जी के इतने गुरूमुख थे कि उन्होंने (हुजूर मानव दयाल) जी ने खुद वर्णन किया है कि 'मैं शब्दानन्द जी को आज्ञा देने से पहले दो बार सोचता हूं। अगर चलते जहाज से कूदने को कह दूं तो सहर्ष तैयार हो जाते हैं।' ऐसी कुछ घटनायें उनके जीवन में घटित हुई हैं कि अपने शरीर की जरा भी परवाह न करते हुये आज्ञा पूर्ण करने के लिए तैयार रहते हैं। सेवा भाव इतना कूट–कूट कर भरा था। वे अपनी मुबारक जुबान से खुद वर्णन करते थे कि जब मैं दाता दयाल के दरबार में परमार्थ की जिज्ञासा लेकर गया तो उन्होंने मुझे अपनी मां की सेवा करने का आदेश दिया। कुछ हिदायतें भी साथ में दीं। उनको निभाने में शब्दानन्द जी ने कोई कसर नहीं छोडी। जो बाद में उनकी जिंदगी में रंग लाई।

माहराज का पूरा नाम श्री शब्दानन्द राव था। इनके पिता जी का नाम श्री गोपाल नारायण राय जी था। ये मुबारकपुर ग्राम जिला गाजीपुर के निवासी थे। इनकी माता श्री का नाम श्री भाग्यवती था जो दाता दयाल जी परम भक्त थीं। उसके नाम पर दाता दयाल जी ने शिव–शब्द सागर में कुछ शब्द लिखे हैं। इनकी धर्म पत्नी जी जो कि एक उच्च कोटि की विदुषी, धर्मपरायण का नाम सुधाराय (माता जी) है। उनके महान त्याग से ही माहराज जी परमार्थ के कार्य में इतना सहयोग दे सके। माता जी इनकी परमार्थ की दृढ़ रूचि को देख कर स्वयं अपने छोटे–छोटे बच्चों का कर्तव्य संभालती चली आईं अपने पारिवारिक समस्त कार्य को सम्पन्न करके खुद भी परमार्थ के कार्य के लिए अग्रसर हुई। इनका भाग्यशाली परिवार तीन लडके तथा एक सुशील लडकी है। सभी मानवता के प्रेमी परमार्थ की ओर अग्रसर हैं। व्यवसाय से माहराज जी एक उच्च कोटि के अध्यापक रहे हैं। सांसारिक गुरू तथा आध्यात्म के परम गुरू की उच्च कला के आसीन थे।

श्री पुष्कर दयाल जी के घर पर जब मुझे माहराज जी के दर्शन पहली बार हुए । वह दिन मेरी जिंदगी का परम सौभाग्य का दिन था। मुझे पता लगा था कि ये मानव दयाल जी के मुख्य गुरूमुख शिष्य हैं। जो अपने गुरू के ही समय में सतगुरू वक्त की पदवी से सुशोभित थे। उनके दर्शन मात्र से ही अद्‌भुत शांति प्राप्त हुई कोई भी प्रश्न की जिज्ञासा नहीं रही। सभी प्रश्नों के हल उनके साथ वार्तालाप करके ही समाप्त हुये। शाम को सतसंग हुआ। मैंने भी अपना परिचय दिया। अपनी अर्न्तमुखी दृष्टि से मुझे शक्तिपात कर दिया, जिसका अनुभव मुझे बाद में पता लगा। उनके मधुर व्यवहार एवं शांत स्वभाव को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुई। अपने प्रेमियों की जिन्दगी को संवारने वाले ने मुझे धाम पर आने का आदेश दिया। मेरी अन्तर की त्रुटियों को सुधारने के हेतु उन्होंने बार बार धाम पर आने का आग्रह किया। उनका यह आदेश मैं चाह कर भी नहीं टाल सकी। मैं एक दिन महाराज जी के दरबार में चली आई तो पता लगा कि माहराज जी ने अपनी दया मेहर से मुझे इस योग्य

समझा कि उन्होंने परमार्थ के कार्य का दायित्व मुझे सौंपा है। मैंने अपनी अयोग्यता तथा कमजोरियां बताईं पर उन्होंने कुछ भी नहीं माना अपितु अपनी करूणामय दृष्टि से मेरा परमार्थ तथा व्यवहारिक कार्य भी सुधार दिया। अपनी रहमत की दृष्टि से लोक तथा परलोक पर भी दृष्टि डाली।

मेरे परिवार की एक दर्दनाक घटना पर भी उनकी दया हुई। मेरी बहू का हाथ दीवाली पर बुरी तरह जल गया था। ड़ा0 ने निराशा जताई। पूरा हाथ नहीं खुलेगा, जख्म तो ठीक कर देंगे। पर मेरी बहू ने रोते–रोते महाराज जी को टेलीफोन किया, चुप होने का नाम नहीं लेती थी। महाराज जी ने टेलीफोन से ही चुप करा के सांतवना दी कि आप का हाथ बिल्कुल ठीक हो जायगा। मालिक पर विश्वास रखो। तब बहु का हाथ बिल्कुल काम करने के योग्य हुआ। उनकी नजरें मेहर की कहां तक गिनती करें। पग–पग पर वे सभी अपने प्रेमियों की संभाल करते थे।

उनकी वाणी सदा रहस्यात्मक होती थी। हर समय सहज समाधि में रहने वाले, कभी भी उद्विग्नता को नहीं प्राप्त होते थे। वे सदा ऊँची अवस्था में रहते थे। उन्होंने 15 दिन अपनी कुटिया में समाधि में रहने का निर्णय लिया। उस समय में माहराज का किसी से मिलना नहीं था। पर समाधि से उठकर उनका तेजस्वी रूप देखने योग्य था। प्रकाश स्वरूप दिव्य ज्योति उनके ललाट पर शोभित थी।

जन्मजात से ही संस्कारी माता पिता के पास अवतरित होके उनका नाम भी ऐसा ही रखा था। जो कि बहुत महत्व रखता है। जब से इस संसार का आविर्भाव हुआ है, शब्द ही पहले प्रकट हुआ है। जब संसार में एक बच्चा जन्म लेता है तो पहले शब्द की करता है। यदि शब्द नहीं किया तो मृत घोषित कर देते हैं। आदि अवस्था का नाम ही शब्द है। परमार्थ की ऊँची अवस्था में शब्द को प्रमुखता दी जाती है। शब्द में लय होना है। पहले के साधन में जितने भी रंग, रूप, रेखायें हैं, सभी शब्द में लय हो जाते हैं। कहा भी है–

'जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाये।

सुरत समानी शब्द में ताको, काल न खाये।।

शब्द के प्रकट होते जीव को काल और माया नहीं भरमाते हैं। माहराज जी सत चित आनन्द की मूरत तथा ज्ञान के दाता थे। निराकार तथा साकार की पहचान कराने वाले, शब्द तथा अशब्द, सुरत के भंडार एवं सर्व हितकारी परमार्थ के कारण हेतु ही उनका आविर्भाव हुआ था। सत्संग में अमृत–धार बरसाने वाले अपने उपदेश से मानव जाति के सभी भरम विकारों से मुक्त कर देते थे। जब भी सत्संग देते थे तो शेर की दहाड़ की तरह चारों दिशायें गूंज उठती थीं।

सत्संग भी वे कभी नीचे की श्रेणी का सतसंग नहीं देते थे, चौथे पद में रहने वाले चौथे पद का ही सत्संग देते थे। वे अपनी विचार धारा से मानव की भावना को हिला कर रख देते थे। प्रकृति का वर्णन अपने सतसंगों में प्रायः करते थे। "प्रकृति हमारी माता है, सतगुरू हमारा बाप है। हम प्रकृति माँ की गोद में बैठे हैं।" अपनी जिन्दगी के रहते सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास के प्रकोपों को सहते हुए एक छोटी सी कुटिया में निवास करते थे। दान दी हुई भूमि पर दुर्गापुर में अखण्ड मानव मन्दिर धुरपद धाम मन्दिर की नींव रखी। अपने गुरू माहराज की पुण्य स्मृति में समाधि का निर्माण किया जो कि संसार में एक अद्‌भुत स्थान रखता है। अपने शरीर तथा गृहस्थ की चिन्ता छोड कर तन, मन, धन से अपने गुरू का ऋण उतारने में सफल रहे हैं।

अपने अनुभव के आधार पर उन्होंने विज्ञान पर भी टिप्पणी की है कि " वर्तमान विज्ञान अपने में पूर्ण नहीं है। सौर मंडल में नौ ग्रह हैं। वर्तमान विज्ञान को इन नौ ग्रहों का ज्ञान नहीं है। केवल कुछ ही ग्रहों का खण्डित ज्ञान है। अनन्त ब्रह्माण्ड में ऐसे अनन्त सौर मंडल हैं जिनका ज्ञान वर्तमान विज्ञान को नहीं है। गुरूकुल तथा सतसंग ने पूर्ण विज्ञान का पता दिया है। विज्ञान का नाम ही शब्द विज्ञान है। विज्ञान का अन्तिम रूप–

Last and final ramification of Science is Sonology पूर्ण विज्ञान Sonology है।

हिदायत नामा जगत कल्याण पुस्तक में लिखा है। उन्होंने जगत कल्याण के लिये बहुत सी किताबें लिखी हैं। वे कहते थेः–

'सैन बैन को जो लखे तासो कहिए धाय।
सैन बैन को जो ना समझे तासो कहे बलाय।।'

उनकी वाणी को कोई चतुर सयाना ज्ञानी ही समझ सकता था। क्योंकि वे सदा रहस्यात्मक वाणी में ही समझाया थे। उनकी वाणी को समझना चींटी बन कर रेत से शक्कर निकालने की युक्ति लगा कर समझना है। पर जिस पर मालिक की पूर्ण दया है उनको पूर्णतया अपने रंग में रंग देकर उसको कभी कुरंग नहीं होने दिया। अपितु वे दिन प्रति दिन उज्जवल होकर प्रज्जवलित हुये। उन्होंने अपने ज्ञान चातुर्य से सबों को कीट से भृंगी बना दिया।

उनका भौतिक शरीर कुछ कमजोरियों के कारण क्षीण हुआ था। इस कारण से कुछ समय उठने बैठने में तकलीफ अनुभव करने लगे। उनके परिवार वालों ने अपने को भाग्यशाली समझ कर बहुत सेवा की। अतः 20 मार्च गुरूवार 2014 को प्रातः वेला में उनका भौतिक शरीर छूट गया। चूंकि आज माहराज जी सशरीर हमारे बीच नहीं हैं पर उनका अस्तित्व सदा हमारे साथ है। वे हमारे अंग–संग है पग पग पर हमारे साथ हमारा पथ–प्रर्दशन कर रहे हैं ऐसा हमारा विश्वास है। उन्होंने जिस जिस को अपने पद कमलों में आश्रय दिया है, वह कभी किसी कमी को महसूस नहीं करेगा। उनकी महिमा का बखान करना सूर्य को दिया दिखाने जैसा है। ऐसे गुरू पर हमें नाज है तथा अभिमान है। वे जिस कार्य के लक्ष्य की पूर्ति के लिए उनका अविर्भाव हुआ था, वे उसे पूरा कर गये। पूर्ण थे और पूर्णता को प्राप्त हुये। जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य योनी मिलती है वह लक्ष्य उनको प्राप्त हुआ। वे मालिक की गोद में समाये हैं। उनके लिए शोक करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

कबीर के कथनानुसार–

'ना मेरे अस्थी, रक्त नहीं चरमा,
हम तो शब्द प्रकाशी।

देह अपार पार पुरूषोत्तम
कहे कबीर अविनाशी।।'
'हरि मरे तो हम हू मरि हैं।
हरि न मरे, हम काहे मरिहै।'
'कहै कबीर मन मन ही मिलावा।
अमर भये सुख सागर पावा।।'

शब्दानन्द जी महाराज मरे नहीं, वे अमर है, उन्हें अमरत्व का वरदान मिला है। उनके चरणों में यही विनती है कि–

'तू है दाता तू है हितकारी,
तू समरथ तू जगदाधारी।
तेरी दया पर मैं बलिहारी।'
राधास्वामी!

रत्ना पंडित, दिल्ली

दाता दयाल जी महाराज का एक शब्द

शब्द गुरू का नाम है, और शब्द गुरू का रूप है।
शब्द ही चैतन्य है, और चैतन्य का वह कूप है।।
शब्द का लो आसरा, और शब्द का स्थान लो।
शब्द परजा शब्द राजा, राव है और भूप है।।
शब्द का सुमिरन भजन हो, शब्द ही का ध्यान हो।
शब्द ही है एक और यह, शब्द ही बहुरूप है।।
शब्द घट में गूंजता है, रात दिन उसको सुनो।
मन की चंचलता मिटे, यह अगम अलख अनूप है।।
राधास्वामी की दया से, घट के रस्ते में चलूं।
ज्ञान का सूरज है चमका, उसकी चहुं दिस धूप है।।

शिव शब्द सागर (प्रथम भाग) पेज 102

सुश्री जयश्री खमेशरा के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में

संतमत क्या होता है मुझे नहीं पता। संत कैसा होता है मुझे नहीं पता। संत कौन है और कहां रहता है, इसका भी मुझे कुछ पता नहीं। हां मुझे इतना पता है कि बचपन से ही मुझे परमात्मा से मिलने की चाह जरूर थी और इसी सिलसिले में मैं अनेक महानुभवों के सम्पर्क में भी आई मगर इस तरफ कोई ठोस कदम न उठा सकी। फिर यह सोचकर कि 'जैसी उसकी मौज' इस इच्छा को अन्य अनेक इच्छाओं की तरह 'पेंडिग सूची' में रख छोड़ा।

एक दिन अचानक अपनी ही फर्म (चार्टर्ड़ एकाउन्टेन्ट की फर्म जिसमें मैं पार्ट–टाइम पार्टनर के रूप में प्रातः सिर्फ दो घन्टे के लिए जाया करती थी) में मैंने एक साधारण से दिखने वाले व्यक्ति को आध्यात्मिकता के बारे में कुछ कहते हुये सुना तो मेरा ध्यान उनकी ओर गया और मैंने उनसे कहा कि 'मैं भी आपसे कुछ बात करना चाहती हूं।' उन्होंने कहा कि यदि आफिस से संबंधित है तो आदेश करें और यदि कोई अन्य विषय है, तो आफिस–टाइम के बाद बात हो सकती है। मुझे उनकी इस बात से और भी अधिक आर्कषण हुआ। मैं शाम को लगभग चार बजे पुनः आफिस गई और उनसे बात की। मुझे लगा कि अब अच्छे दिन आने वाले हैं। अंत में उन्होंने कहा कि इससे अधिक जानकारी चाहिए तो उनके गुरू से मिलना होगा जिनका नाम व पता उन्होंने मुझे लिख कर दे दिया।

प्रभु को पाने का जो संस्कार न जाने कब से दबा हुआ था, वह जाग उठा और मैं रविवार को टैक्सी लेकर नियत स्थान पर जा पंहुची। वहां पर साप्ताहिक सत्संग होता था जो उस समय समाप्त हो चुका था। जब मैंने वहां एक बहुत ही साधारण से बजुर्ग को सत्संग हाल से बाहर आते देखा तो मैने उन्हें अपना परिचय दिया और उद्देश्य भी बताया तो उन्होंने पूछा कि 'पति के साथ आई हो'? मैंने कहा कि नहीं, अकेली टैक्सी में आई हूं।' उन्होंने कहा कि आप

वापस जाओ और जब कभी भी आओ तो पति के साथ आना। जब मैंने कहा कि मुझे फलां सज्जन ने भेजा है तो उन्होंने कहा कि फिर तो तुम्हें उनको साथ लेकर आना चाहिए था। अब आप जाओ। और मैं वापस आ गई।

अगली बार मैं उन्हीं सज्जन के साथ गई और सत्संग सुनकर वापस आ गई। महाराज जी से कोई बात नहीं हुई। इसके बाद एक बार उन सज्जन ने कहा कि फलां तारीख को बड़ा सत्संग है आप आना चाहो तो आ जाना। मैं उस उत्सव पर अपने पति और बच्चों के साथ गई। मुझे वहां पर ज्ञात हुआ कि महाराज जी सत्संग के बाद कुछ व्यक्तियों को नाम दान दे रहे हैं। मेरे अंदर भी इच्छा जोर पकड़ गई। मैंने उन सज्जन से मन की बात कही तो उन्होंने कहा घुंस जाओ अन्दर। मैं कमरे के अन्दर चली गई। महाराज जी ने लगभग एक घन्टे में उन व्यक्तियों को दीक्षा दी और बाहर निकलने लगे। मैंने उन सज्जन से कहा कि मुझे तो महाराज जी ने दीक्षा दी ही नहीं। वे महाराज जी के पास गये और मेरी सिफारिश की तो उन्होंने कहा कि ये तो मेरे पास दीक्षा के लिए आई ही नहीं, दूर ही बैठी रहीं। अब फिर कभी देखा जायगा। लेकिन मेरी जिद करने पर महाराज जी ने मुझे दीक्षा दी (यह बात शायद अक्टूबर 2006 की है)। उस समय मेरे मन व आत्मा को शांति का अनुभव हुआ और मन में कुछ भी संशय और भ्रम नहीं रहा।

दीक्षा लेने के बाद आदतन मैंने महाराज जी के बताए हुए आदेशों के अनुसार साधन अभ्यास नहीं किया और सत्संग में भी कभी–कभार साल–छः महीने में ही जाया करती थी लेकिन जब भी जाती थी मन और आत्मा पूर्ण रूप से तृप्त हो जाती थी। उनके सम्पर्क में आने से ही तुष्टि और संतुष्टि मिल जाया करती थी। क्या संत ऐसे ही होते हैं? क्या इसी को संत कहते हैं? यदि हां तो मैंने अपनी जिंदगी में पहली बार एक संत के दर्शन किए हैं जिनको "शब्दानन्द" कहा जाता है। उनके रोम–रोम से मुझे अजीब सा संगीत निकलता हुआ प्रतीत होता था जो वाणी और कानों का विषय नहीं है।

लेकिन उनसे दीक्षा लेने के बाद भी मेरे अन्दर कोई प्रगति नहीं हुई। इसके यूं तो सैकड़ों कारण या बहाने बनाये जा सकते हैं लेकिन मेरी बुद्धि के अनुसार प्रमुख दो कारण हैं– पहला मैंने उनके आदेशों का पालन नहीं किया, दूसरा वे उच्च कोटि का सत्संग देते थे जो मेरी समझ से परे था। शायद प्रभु को यही मंजूर था या इसे समय की विडंबना कह सकते हैं। एक दिन मैंने उन्हीं सज्जन को फिर फोन किया (वे अभी भी उसी फर्म में कार्य करते हैं लेकिन अब मैं पार्ट–टाइम भी उस फर्म में नहीं जाती हूं, हालांकि तकनीकी रूप से मैं अभी भी उस फर्म में पार्टनर हूं) कि सर! 'मैं आपसे आपके घर पर मिलना चाहती हूं।' उन्होंने कहा कि रविवार को आ जाओ।

जब मैं उनके घर गई तो मैंने उनसे पूछा कि पिछले 5–6 साल से मेरी कोई भी आत्मिक उन्नति नहीं हुई है। क्या मुझे नया गुरू कर लेना चाहिए? उन्होंने कहा कि बेशक तुम्हें नया गुरू कर लेना चाहिए। क्योंकि इस जिंदगी का असली मकसद जितनी जल्दी हो सके पूरा कर लो, जीवन का कोई भरोसा नहीं। लेकिन इस बात की क्या गारंटी कि नये गुरू से तुम्हारी समस्या हल हो ही जायगी। जगह–जगह खेत में कुआं खोदने से पानी नहीं निकलता, उल्टे खेत में गढ्ढे बन जाते हैं फिर वह खेत किसी काम का नहीं रहता। दूसरी बात यह है कि सागर को क्यों दोष देती हो, अपने गोते को को दोष दो। आपने गोता ही गहराई से नहीं लगाया तो मोती कैसे मिलता? बात मेरी समझ में आ गई।

कुछ दिन बाद पुष्कर दयाल जी महाराज के चरण हमारे मकान पर पड़े, अच्छा लगा और फिर मैं उनके सत्संगों में जाने लगी। एक दिन मैंने पुष्कर दयाल जी को अपने मकान पर सत्संग कराने को कहा। वे सहर्ष तैयार हो गये और 11 मई 2014 को ऐसा हो गया। उस दिन उन्होंने मुझे और मेरे पति को अलग से बैठाकर नाम दान भी दिया, आशीर्वाद भी दिया और सूखे चमन को फिर से हरा भरा कर दिया। क्या संत ऐसे ही होते हैं, यदि हां तो अब मैं कह सकती हूं कि मैंने संत को देखा है। और मीरा के शब्दों में 'पायो जी मैंने नाम रत्न धन पायो।'

सी. ऐ. जयश्री खमेशरा

आचार्या बहन निर्मला जी के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में

शब्दानन्द जी महाराज एक पूर्ण संत थे। मैं उनकी सादगी व उनकी गुरू शरणागति से बहुत प्रभावित थी एक बार हम 1995 में गुरू पूर्णिमा के अवसर पर होशियारपुर गये। वहां जाकर पता चला कि मानव दयाल जी महाराज तो अमेरिका गए हुए हैं। जब हम वहां से लौटने लगे तो मैंने सोचा कि शब्दानन्द जी महाराज से मिलें, उनसे ही कुछ मिल जाये। जब हम उनके पास गये तो वहां पहले से बहुत से सत्संगी उन्हें घेरे हुए खड़े थे। हम उन तक पहुंच ही नहीं सकते थे। मैं आंखों में आंसू लिए परिवार के सदस्यों के साथ उदास मन से घर वापिस आ गये।

जो कुछ भी होता है मालिक की मौज से अच्छा ही होता है। कुछ समय बाद मुझे पता चला कि हुजूर मानव दयाल जी महाराज फरीदाबाद अपनी कोठी में आ गये हैं और वहीं रह रहे हैं। मैं वहां गई तो महाराज जी ने मुझे बहुत प्रेम दिया और मैं वहां जाने लगी। वहीं पर हुजूर शब्दानन्द जी महाराज का सत्संग का भी होता था। उन्होंने मुझे बहुत प्यार दुलार दिया। उसके बाद दुर्गापुर में भी लगातार सत्संग में जाती थी। उन्होंने अपने प्रेम, आशीर्वादों से हमें धन्य कर दिया। मैं तो अपने आपको बहुत भाग्यशाली समझती हूं कि मुझे ऐसे पूर्ण सन्तों का सानिध्य मिला।

मानव दयाल जी महाराज ने मेरे अन्दर नाम रूपी जो बीज डाला था, शब्दानन्द जी महाराज ने अपने सत्संग रूपी अमृत की वर्षा से उसे सींचा, अंकुरित किया, बड़ा किया और लहलहा दिया और अब परमसंत पुष्कर दयाल जी महाराज उसे सम्भाल रहे हैं। पुष्कर दयाल जी महाराज हमेशा कहते रहते हैं कि भगवान के लिए आंसू बहाओ तो वो एक–एक आंसूओं का हिसाब देते हैं। मुझे तो इन संतों ने धन्य कर दिया। मैं तो इनका ऋण कभी नहीं चुका सकती।

दाता दयाल जी महाराज एक शब्द में लिखते हैं–

गुरू आये इस जगत में, दीन जीव के काज।
अब तो तारे ही बने, तुम्हें हमारी लाज।।
हम तो आप ही पतित हैं, तुम हो पतित उधार।
आप पड़े भव सिंधु में, कीजे भव जल पार।।
शब्द जहाज चढ़ाय कर, सुरत निरत की ड़ोर।
बेड़ा कीजे पार प्रभु, निरख आपनी ओर।।
दुख भंजन मन रंजना, साज भक्ति का साज।
दीन दुखी को तारिये, संतों के सरताज।।
तुम तो समरथ सांइयां, सब जग के आधार।
साध संग नित दीजिये, राधास्वामी परम दयार।।

कहते हैं कि अगर तुम दूध में से मक्खन या घी निकालना चाहते हो तो पहले दूध को दही बनाना पड़ता है फिर उस दही को बिलोना पड़ता है तब उसमें से मक्खन निकलता है। दूध की दही बनाने के लिए उसमें पहले से बनी हुई दही मिलानी पड़ती है। यही प्रक्रिया मानव दयाल जी महाराज ने मेरे साथ की। मुझे नामदान तो मानव दयाल जी ने दिया अर्थात् 'नाम' की दही तो उन्होंने बीज रूप में मेरे अंदर ड़ाल दी। उसके बाद हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने अपने सत्संगों से मुझे खूब बिलोया, सींचा, फेंटा और इस काबिल बना दिया कि उसमें से मक्खन निकल सके। अब हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज ने उस मक्खन को निकाल कर उसे अपनी दया से सुगंधित बनाकर (13.04.2014 को आचार्या बना कर) कह दिया कि जो भी तुम्हें अनुभव हुआ है, दूसरों को बांटो। मैं उन्हें कहती ही रह गई कि महाराज जी अभी तो मुझमें बहुत सी कमियां हैं तो उन्होंने मेरी एक नही सुनी। 'शायद इसमें भी कोई मसलहत है परवरदिगार की'। मेरी कमियों को दूर करने का शायद यही रास्ता हो गुरूवर की निगाह में।' अब मैं गुरू ज्ञान को आगे फैला रही हूं।

मुझे हुजूर शब्दानन्द जी महाराज की वैसे तो सारी ही बातें अच्छी लगती थीं लेकिन सबसे ज्यादा मुझे उनकी यह बात पसंद आती थी जब वे कहते थे कि गुरू आपको बाहर वाले शब्द से

निकाल कर एक–एक पौड़ी चढ़ाते हुये अंतर में अन्तिम पौड़ी तक पंहुचा देते हैं–यह अन्तिम पौड़ी ही संतमत है। सनातन धर्म की अन्तिम पौड़ी संतमत है। बस तुम तो सिर्फ गुरू का ध्यान करते रहो, बाकी बातें पीछे रखो। तुम किसी भी वाद–विवाद में क्यों पड़ते हो। यदि तुम गेंदा का फूल हो तो गुलाब क्यों बनना चाहते हो।

वे कहते थे कि हमें क्या करना है? हमें अपने आप से प्रेम करना है, सत्गुरू से प्रेम करना है, सत्गुरू के वचनों से प्रेम करना है। सत्गुरू जो हमें सुमिरन ध्यान, भजन बताते हैं उससे शब्द प्रकट हो जाता है। सत्गुरू के साथ किया हुआ आपका प्रेम आपको मंजिल तक पंहुचा देता है। प्रेम और भक्ति एक ही चीज है। हमारा असली धर्म प्रेम है। मानव दयाल जी कहते थे कि प्रेम पांचवा पुरूषार्थ है (अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष ये चार पुरूशार्थ माने जाते हैं)। जब तक आपके अंदर सत्गुरू के प्रति प्रेम पैदा नहीं होगा, आपका काम नहीं बन सकता। जब आपकी गुरूभक्ति पूर्ण हुई तब मिनटों में आपका काम बन जाता है। आमतौर पर लोग बनावटी प्रेम या भक्ति करते हैं, असली भक्ति तो कोई गुरूमुख ही करता है। सत्गुरू ऐसे गुरूमुख की तलाश करते रहते हैं, वे मनमुख को नहीं चाहते। गुरूमुखता डरपोकों का काम नहीं है। भंवरा जो लकड़ी में भी छेद कर सकता है, वह प्रेम के कारण रात में कमल के फूल में बंद हो जाता है और उस कोमल से फूल को छेद कर बाहर नहीं निकलता, क्योंकि वह उस फूल से प्रेम करता है। यह जीते–जी का मर जाना है। कहा है–**यह तो मार्ग है प्रेम का, खाला का घर नांहि।**

इसी प्रकार अहंकार के बारे में किसी न कहा है–

है अहंकार का तजना ही फना हो जाना।
खाक को क्या खाक में खाक मिलाये कोई।।

हुजूर पुष्कर दयाल जी कहते हैं कि सत्य कोई लम्बा–चौड़ा नहीं है, जो चीज इन चमड़े की आंखों से दिखाई देती है वह नष्ट होने वाली है, वह सत्य नहीं हो सकती। जो चीज हमारा साथ कभी नहीं छोड़ती, जो हमारा निज स्वरूप है, बस वही सत्य है।

राधास्वामी! निर्मला देवी, फरीदाबाद

संतवर वरिष्ठतम आचार्य श्री गजेन्द्र त्यागी जी के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में राधास्वामी परम दयाल जी सहाइ

'ऐ शब्द दयाल दाता, मानव दयाल है तु।
करदे निहाल मुझको, समझा निहाल है तु।।
मेरे दाता महामानव ने ली तुझसे सेवा भारी
इसलिये कृत्ज्ञ तुम्हारे, तुम गुरू के आज्ञाकारी
ऐ शब्द दयाल दाता, बस बे मिसाल है तु,
कर दे निहाल मुझको समझा निहाल है तु.....1
जग में प्रगटे परम दयाल, तब ली तुमने शरणाई
तेरी माँ ही तेरा गुरू है दिया कह कर ये समझाई
मेरा काम करो एक दिन मेरा ऐलान यु
करदे निहाल मुझको ?, समझा निहाल है तु.....2
फकीरमय मानव ने तुझे अपने अंग लगाया
राधा–स्वामी तुम हो ये कहकर के चेताया
अब काम करो मेरा, मेरा पैगाम यु
करदे निहाल मुझको समझा निहाल है तु.....3

(राधा–स्वामी.....मैंने शब्द दयाल जी महाराज को **'मानव दयाल है तु'** जो कहा है इसलिये कहा है–

पारस और गुरू में बस ये ही अन्तर जान।
पारस तो लोहे को सोना करे, गुरू करले आप समान।।
गुरू को कीजिये दण्डवत, कोटि–कोटि प्रणाम।
कीट ना जाने भृंग को, गुरू कर ले आप समान।।

हुजूर शब्द दयाल जी महाराज ने महाराजाधिराज हुजूर मानव दयाल जी महाराज जी की जो सेवा की वह सर्व विदित है। जैसे ही हुजूर मानव दयाल जी महाराज अमेरिका से बनारस दाता दयाल की धाम मत्था टेकने गये रास्ते में शब्द दयाल जी महाराज को बुला लिया गया।

वो ऐसी ही हस्ती थी, मुझे भी बुला लिया था। विशेष बात ये है कि शब्द दयाल जी महाराज अपने किसी बच्चे की भी शादी नहीं कर पाये थे। पहली ही दृष्टि में मानव दयाल जी के होकर रह गये, जैसे कोई पतिव्रता। आपकी सभी पारिवारिक जिम्मदारियां हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने पूरी कराईं।

काल चक्र का सहज हिंडोला झूला अचरज न्यारा।
सब कोई झूले झूला चढ़कर काल झुलावन हारा।।

इस झूले में मानवता मंदिर होशियारपुर भी झूला और ऐसा झूला, जिसे स्वयं मालिके–कुल परम दयाल जी महाराज ने अपना उत्तराधिकारी चुना (हुजूर मानव दयाल जी को उन्होंने स्वयं चुना था), यदि उस समय शब्द दयाल जी महाराज न होते तो आज मानवता मंदिर होशियारपुर की सन्तों की पंक्ति में शायद हुजूर मानव दयाल जी महाराज का नाम भी न होता। इसलिये मैंने हुजूर शब्द दयाल जी महाराज को **'बे–मिशाल है तु'** कहा है। शब्द दयाल जी महाराज को वैसे ही नहीं बुलाया गया। उनकी माता जी भी दाता दयाल जी महाराज की शिष्या थीं। शिव शब्द सागर में दाता दयाल जी ने माता जी के नाम कई शब्द लिखें हैं। मानव दयाल जी महाराज ने तो आपको शब्द का भण्डार कहा था।

गुरू सोई जो शब्द सनेही, बिना शब्द दूसर ना सेई।
शब्द कमावै सो गुरू पूरा, उन चरनन की हो जा धूरा।।
और पहिचान करो मत कोई, लक्ष्य अलक्ष्य ना देखो सोई।।

यथा नाम तथा गुण माँ–बाप ने बच्चे का नाम 'शब्दानन्द' रखा था। शब्दानन्द जी जिस समय कक्षा 6–7 के विद्यार्थी रहे होगें एक पैसा दो पैसा जोड़–जोड़कर कुछ पैसे जोड़े तब सोचा होशियारपुर जाने का किराया जुड़ चुका है। आप होशियारपुर पहुंच गये लेकिन परम दयाल जी अपनी डीयूटी पर फिरोजपुर थे। बालक शब्दानन्द जैसे तैसे परम दयाल जी के पास पहुंच ही गये। बाबा ने पूछा क्यों आये हो उत्तर दिया बाबा आपकी सेवा के लिये आया हूं। लेकिन बाबा एक अबोध बालक को सेवा में कैसे रख सकते थे। बाबा ने समझाया तेरी माँ ही तेरा गुरू है अपने घर जाओ और माँ

की सेवा करो। लेकिन बाल हट! बच्चे की समझ में न आया। कुछ समय बाद बच्चे को ज्वर हो गया। बाबा ने बच्चे को कहा कि बच्चा मुझे डीयूटी जाना है। मैंने दो ईटें रख दी हैं और एक घड़े मे पानी रख दिया है। टट्टी पेशाब जाना है तो यहां जाना मैं लौटने पर साफई कर दूंगा। अब बच्चा सोचता है कि मैं तो इनकी सेवा करने आया था और ये उल्टी मेरी सेवा करने लगे हैं तो बच्चे ने कहा अच्छा बाबा मैं अपने घर जाना चाहता हूं, और जैसा आपने कहा है मैं माँ की सेवा करूंगा। क्या बच्चे की सोच और क्या बाबा का तरीका समझाने का? सत्य ही है–

पारस और गुरू में बस ये ही अन्तर जान।
पारस तो लोहे को सोना करे, गुरू करले आप समान।।

शब्द दयाल जी महाराज जी गुरू की आज्ञा को कितने हौसले से व सच्चाई से निभाते थे, सबको मालूम है। उनकी शिक्षा का प्रचार और प्रसार करने के लिए भारत के कोने–कोने में जाते थे, जो शिक्षा लुप्त होती गई है जिसके कारण समाज खण्डित हो गया है और अनेकों धर्मों और सम्प्रदायों में बंट गया है उसको पुनर्जीवित करने का काम किया।

जब देखा तेरा यह हाल, माँ वसुन्धरा हुई बेहाल।
दाया उमड़ी पुरूष दयाल, प्रगटे जग में परम दयाल।।
भु तल गाड़ा तुमको मानवता के नाम।
मानवता के झन्डे कर जोड़ करें प्रणाम।।

हुजूर शब्दानन्द जी महाराज की क्या सच्चाई थी। शब्द दयाल एक पुस्तक लिख रहे थे। गरमी का मौसम था। और ये वृक्ष के नीचे बैठे थे। किसी सत्संगी ने फरमाया, 'हुजूर गर्मी बहुत है कूलर में बैठ कर लिख लीजिये। हुजूर ने फरमाया कूलर मेरा नहीं मंदिर का है।'

शब्द दयाल जी महाराज ने गुरू की आज्ञा का पालन करते हुए गुरू ऋण से उऋण होने के लिए अपना कार्य भार सुयोग्य, प्रेम की मूरत आचार्य श्रेष्ठ हुजूर पुष्कर दयाल जी को सौंप कर स्वयं 20.03.2014 को प्रातः 1:30 बजे परम तत्व में विलीन हो गये।

महाराज श्री शब्द दयाल जी व माता जी मुझ नाचीज को बहुत प्यार करते थे। इसलिये मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली समझता हूं।

सबको राधास्वामी! मालिक सबका कल्याण करे। गजेन्द्र

आचार्य केदार लाल गौड के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में

संत तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में शुरू में ही ये पंक्तियां वन्दना के रूप में लिखी है 'वन्दौ संत असंतन चरना'। मैं यह नहीं कहता कि ये पंक्तियां दोष–मुक्त हैं या दोष–युक्त हैं, क्योंकि जब सभी जीव मालिक का ही प्राकट्य हैं तो सन्त और असन्त में भेद करना या द्वैत–भाव रखना मेरी सामर्थ्य से परे है। अतः मैं तो गुरू के सभी स्वरूपों के चरणों की वंदना करता हूं। ऐसा संस्कार मुझे विरासत में मिला है। जब मैं छोटा था तभी से मैं हुजूर मानव दयाल जी के सत्संगों में अपने पिता जी (जिन्हें हमारे इलाके के सभी लोग "काका जी" कहकर बुलाते थे और वे उन्हें गुरू का रूप ही समझते थे और वे थे भी ऐसे ही)के साथ सालवान पब्लिक स्कूल, राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली जाया करता था। कुछ तो पूर्व जन्मों के संस्कार, कुछ माता–पिता के संस्कार और कुछ सतगुरू के सत्संग के संस्कारों ने मेरी अच्छी घड़त की और फिर कुदरत ने व्यसाय भी वही दिया जो मेरे इष्ट का था (हुजूर मानव दयाल जी महाराज एवं हुजूर शब्दानन्द जी महाराज अध्यापक ही थे)। इस व्यवसाय में पग–पग पर अपने आचरण पर विशेष ध्यान देने की जरूरत पड़ती है। इन सबका परिणाम यह निकला कि मेरे अंदर सतगुरू को खोजने का जज्बा पैदा हो गया। किसी न ठीक ही कहा है–

राह भी तू है, राही भी तू।
तुझ संग मिलकर तुझ तक पहुंचूं, यही है आरजू।

यों तो इस जीव को नामदान हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने दिया था लेकिन असली नामदान तो मुझे हुजूर शब्दानन्द जी महाराज से मिला। मेरे पिता जी सालवान पब्लिक स्कूल में हमेशा मुझे कहा करते थे कि सामने जो सीधे–सादे कपड़ों में ये सज्जन बैठे हैं इनके अन्दर मालिक पूर्णरूप से अवतरित है। उनका

इशारा हुजूर शब्दानन्द जी महाराज की ओर हुआ करता था।

कालान्तर में हुजूर शब्दानन्द जी महाराज अपने सतगुरू की सेवा करते–करते फरीदाबाद उनकी कोठी पर आ गये और उनकी सेवा का फल यह हुआ कि ये उनका ही रूप हो गये। यहां पुरनूर हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के बारे में कुछ लिखना मेरे जैसे जीव के लिए संभव नहीं है। शायद कबीर साहब के सामने भी यही समस्या आई हो और तभी उन्होंने कहा हो–

सब धरती कागज करौं, लेखन सब बन राय।
सात समुद्र की मसि करौं, गुरू गुन लिखा न जाय।।

हां मालिके कुल हुजूर शब्दानन्द जी के के विषय में मेरी जात (जो उन्हीं की अंश है), का जो अनुभव है, टूटे–फूटे शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास कर रही है। यह मेरी इच्छा कतई नहीं है, बस प्रयास–मात्र है। सच पूछो तो मेरी अपनी कोई इच्छा ही नहीं है, अगर कुछ इच्छा है तो यही है, **'है आरजू ये कि कोई आरजू न हो, "मैं" को मिटा दूं कि इसमे "मैं" व "तू" न हो।'** यह तो सब कहने की बातें हैं। लेकिन इस संसार में सब कुछ संभव है। मैंने अपनी आंखों से एक हस्ती को देखा है जिसकी यही दशा थी जो ऊपर बताई गई है और उस हस्ती का नाम है 'शब्दानन्द'। उनके अन्दर द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत नाम मात्र को भी नहीं था। इस विषय में दाता दयाल जी अपने एक शब्द में लिखते हैं–

'अद्वैत द्वैत के फेर पड़ा, अभिमानी एक का दो का है।
मैं सच सच तुमसे कहता हूं, यह भूल भरम और धोका है।।'

'शब्दानन्द' जैसा नाम वैसा गुण। शायद दाता दयाल जी महाराज ने आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व उनके बारे में ही यह शब्द लिखकर छोड़ दिया था और शायद यही वजह थी कि हुजूर शब्दानन्द जी महाराज इस शब्द का गायन बड़े प्रेम से करते थे–

'मंगलम् अशब्द रूप, शब्द रूप स्वामी।
मंगलम् अलख अनाम, अगम नाम नामी।।
मंगलम् दीन बंधू, दीन नाथ दाता।
मंगलम् अभेद भेद, आनन्द घन त्राता।।

महिमा अनन्त आदि, अन्त कौन गावे।
भेद तेरा कौन जाने, कौन कह सुनावे।।
संत भेस प्रगट जगत, जीव को चिताया।
काल कर्म फंद काट, धुर ले पहुंचाया।।
प्रथम तत्व निज स्वरूप, पद कमल नमामी।
गाऊँ ध्याऊँ रात दिवस, भजूं राधास्वामी।।

लेकिन मुझ जैसे न जाने कितने जीव हैं जो हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को बाहर से तो गुरू मानते हैं लेकिन अन्दर से, सच्चे मन से उनकी बात को नहीं मानते। मुझे हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने एक बार कहा था, 'पुष्कर दयाल को मत छोड़ना' और मैं उसी क्षण से पुष्कर दयाल जी महाराज का मुरीद हो गया। सांस लेना तो कभी छूट जाये तो छूट जाये लेकिन स्वप्न में भी मैं पुष्कर दयाल जी महाराज को छोड़ने को तैयार नहीं हूं। देखने में आया है कि कुछ ऐसे भी सतसंगी हैं जो हर रोज सुबह शाम हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को मत्था टेकते थे लेकिन उनकी बात 'हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज संत सतगुरूवक्त है' को नहीं मानते थे। फिर हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने हुजूर पुष्कर दयाल जी महाराज के पांव छूने शुरू कर दिये थे। बलिया में रहते हुए हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने शायद इतनी बार 'राधास्वामी' नाम का सुमिरन न किया हो जितनी बार 'मेरे प्यारे गंजू' का सुमिरन किया, लेकिन उन पर फिर भी कोई असर नहीं हुआ।

किसी ने कहा है, **'बहुत गई थोड़ी बची, पल पल रही बिहाय। एक घड़ी के कारने, ना कलंक लग जाय।'** अर्थात् जो बीत गया सो बीत गया, अब तो सयाने बन जाओ। क्यों अपनी ऊर्जा को छोटी–छोटी बातों में खर्च करते हो– आज दाल में नमक कम है, चाय में चीनी ज्यादा है, पिता का दर्जा क्या मालिक से कम है, हुजूर शब्दानन्द जी के फोटो पर फूल माला क्यों चढ़ाई, उनकी फोटो ऐसे क्यों खिंचवाई आदि–आदि। हुजूर दाता दयाल जी महाराज जब अपने गुरू हुजूर महाराज जी से मिलने तीसरी बार आगरा गये तो उनके गुरू ने पूछा, 'क्यों आये हो?' दाता दयाल ने

कहा, 'गुरू के दर्शन करने आया हूं।' इस पर हुजूर महाराज ने डांट लगाई और कहा कि, 'गुरू क्या आगरा में रहता है?' इसी प्रकार मैं अपने आपसे पूछता हूं कि 'गुरू क्या फोटो में रहता है?'

केदार सावधान! "देखो निन्दा किसी की भी न करो। प्रकृति के प्रबंध में जो काम व्यक्तितग रूप से जिसके सुपुर्द किया हुआ है, वह उसी को कर रहा है। उसकी व्यक्तिगत योग्यता को छीनने का अधिकार किसी को भी नहीं है। वह अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है, तुम भी अपने कर्त्तव्य का पालन करो। तुम्हें किसने लाईसेंस दिया है कि तुम किसी की समीक्षा करो। हां तुम अपना आत्म–निरीक्षण नित्य करो लेकिन दूसरों को मेरा ही रूप मानकर उनके प्रति सदा प्रेम भाव रखो, और बस!"

मैंनें अपने सत्संगों में आप लोगों को कितना समझाया कि जब तक जीवन है खेल खेलना आवश्यक है। लेकिन चौथे पद में रहने वाले का खेल नियमित और संयमित रहता है जबकि अन्य लोगों की यह दशा नहीं होती। वे उस खेल को खेल की तरह नहीं खेलते बल्कि हार–जीत, मान–अपमान, लाभ–हानि के लिए खेलते हैं, इसलिए उसके परिणामों से सुख–दुख महसूस करते रहते हैं। केदार! तू तो मेरा अति विशिष्ट प्रेमी है, गुरूमुख है, इसलिए तू इन सब बातों से बचकर रह। तुझे यह सब बातें शोभा नहीं देती। तू सिर्फ मुझसे प्रेम करता रह। क्योंकि मैं कहे देता हूं –

प्रेम है पूजित, पूजारी और पूजा।
मनुजता है प्रेम, का ही नाम दूजा।।

क्षमा करना गुरूदेव! भूल हो गई, आइन्दा कभी ऐसा नहीं होगा। मैं आपके चरणों में पूर्ण रूप से समर्पित हूं और सभी सज्जनों से मत्था टेक कर क्षमा प्रार्थी हूं। चूंकि आप दया के सागर हैं अतः आपके सभी श्रद्धालु भी दया के भंडार हैं। इसलिए मैं आप से और आपके श्रद्धालु भक्तों से दया की भीख मांगता हूं।

सतगुरू सबका कल्याण करें!

आप सबके चरणों की धूल
केदार

आचार्य रविन्द्र जी अलीगढ़ वालों के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में

कहते हैं कि किसी भी संत को यदि जानना चाहते हो तो उसकी कथनी, करनी और रहनी को देखो। संत की कथनी, करनी और रहनी एक समान होती हैं। परम संत हुजूर शब्दानन्द जी महाराज इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। मुशिद तो सभी के काम आते हैं, लेकिन हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ऐसे शागिर्द थे जो मुशिर्द के काम आये। जब तक हुजूर मानव दयाल जी महाराज शरीर में थे, हुजूर शब्दानन्द जी महाराज अपने मुर्शिद के इशारों पर वैसे ही चलते थे जैसे अपने समय का महान योद्धा महाराणा प्रताप का घोड़ा (चेतक), जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि 'जरा हवा से बाग हिली, लेकर सवार उड़ जाता था।' एक बार हुजूर मानव दयाल जी महाराज जब एस्कार्ट हॉस्पीटल, फरीदाबाद में भर्ती थे तो उस समय उन्होंने हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को यह कह दिया 'मुझे संभाल कर रखना।' और हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने उन्हें ऐसा संभाल कर रखा कि अपने आपको ही कुर्बान कर दिया लेकिन अपने सत्गुरू को संभालने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वैसे तो यही वाक्य हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने हुजूर शून्यो जी महाराज को भी फरवरी 1998 में शिवरात्रि के अवसर पर राधास्वामी धाम, गोपीगंज में कहा था लेकिन उन्होंने इस वाक्य की अवहेलना करके उस आज्ञा को हवा में उड़ा दिया था।

यहां पर मैं हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के साथ व्यक्तिगत सत्संग के कुछ अंश जो उन्होंने मुझे उस समय दिये थे जब एक बार मैं उनके पास धुरपद धाम में ठहरा हुआ था, प्रस्तुत कर रहा हूं। हालांकि मैंने हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को पूर्ण रूप से अभी तक नहीं समझा है। अतः उन सज्जनों के चरण कमलों में अपना शीश झुकाकर वंदना करता हूं कि जो हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को पूर्ण रूप से जान गये हैं, वे कृपया मुझे क्षमा करें और आशीर्वाद दें।

20.08.2005 को सांय 8.30 के सत्संग में हुजूर शब्दानन्द जी ने फरमाया, 'तू किसको ढूंढ़ता है? तू जिसको ढूंढ़ता है, तू जिसको अपना इष्ट या आदर्श या गुरू समझता है वह तुझसे अलग नहीं है और न तू उससे अलग है। तू अज्ञान के कारण उसे अपने से अलग या दूसरा समझता है, इसलिए न तू उसे समझ पाता है और न अपने आपको अनुभूत कर पाता है।' सबसे पहले तू अपने इष्ट के रूप और स्थान को, जहां वह रहता है, उसे जान ले तब तुझे उसको पहचानने में देर नहीं लगेगी। तेरा असली गुरू शब्द है, और उसका स्थान तेरी दोनों आंखों के बीच में थोड़ा ऊपर जहां नाक की जड़ है, अर्थात् जहां पर सांस लेते समय और सांस छोड़ते समय घर्षण होता है, वहां है। इसको तीसरा तिल या तीसरी आंख भी कहते हैं। वहां पर हर समय शब्द होता रहता है, लेकिन जब तुम्हारा मन एकाग्र हो जाता है तब उस शब्द को सुनने के योग्य बन पाता है। आगे चलकर यही शब्द 'अशब्द गति' में बदल जाता है और वही शब्द हमें हमारी मंजिल चौथे पद तक ले जाता है।

जब यह शब्द गुप्त रहता है तो उसे अनाम कहते हैं और जब यह प्रगट होता है तब इसे 'नाम' या 'गुरू' या 'शब्द' कहते हैं। इसी शब्द से कोटि–कोटि ब्रह्माण्डों की रचना हुई है और रचना करके यही शब्द इस रचना के कण–कण में और अणु–परमाणु में 'केन्द्रस्य केन्द्रम्' के रूप में रहता है। यह शब्द ठोस, द्रव्य, गैस, भौतिक, सूक्ष्म, कारण और महाकारण में रहने के कारण सर्वव्यापी और सर्वाधार है। और तेरा असली रूप भी यही शब्द है। इसलिए तू किसको ढूंढ़ रहा है। सोच! तू अपने आपको ही ढूंढ़ रहा है जो तेरे अन्दर ही है। शब्द तो बाहर भी है लेकिन बाहर का शब्द तुझे तेरी मंजिल तक नहीं पहुंचा सकता। हां बाहर का शब्द यानी गुरू तुझे तेरी मंजिल तक पहुंचने में मदद जरूर कर सकता है। मगर बाहर का गुरू तेरी मंजिल नहीं है। तेरी मंजिल तो तेरे अंदर शब्द में लय होकर अशब्द गति को अनुभूत करना है।

"तूने फैलाया था दामन, आज उसको भर दिया।"

21.08.2005 प्रातः 7.30–तेरा निज स्वरूप शब्दमय है, तेरा गुरू शब्दमय है, तेरा निज स्वरूप और तेरा गुरू दो नहीं बल्कि एक ही हैं और वह तेरे अन्दर ही है, कहीं बाहर नहीं है। तेरी सुरत ही तेरा निज स्वरूप है, वही चेला है और वही गुरू है। तेरी सुरत हरदम शब्द में रहती है क्योंकि वह स्वयं शब्द ही है–उसके अन्दर और बाहर सब जगह शब्द व्याप्त है। अब तू जो यह शिकायत करता है कि सुरत अन्तर में शब्द को सुन नहीं पाती यह हंसी–मखौल की बात है। इसलिए अब तुझे कोई शंका या संशय नहीं रहना चाहिए कि शब्द कहां है और कैसे सुनना है? क्योंकि जो चीज तेरे अन्दर शब्द की तलाश कर रही है, वह सुरत स्वयं शब्द रूप है और वह तेरा ही रूप है। और यही अन्तिम सच्चाई है।

21.08.2005 सांय 8.00– तुम कुछ मत किया करो, तुम बस निश्चिंत रहा करो। क्योंकि स्वामी जी महाराज ने कहा है–

'सब करनी मैं आप कराऊँ, पहुंचाऊँ धुर दरबारा।
तुम्हरी चिन्ता मैं मन राखी, तुम अचिन्त रह धरो पियारा।।'

सभी लोग करने–धरने के चक्कर में रात–दिन लगे रहते हैं। वे मन, वचन और शरीर से जो भी कर्म करते हैं उसी के जाल में फंसते जाते हैं। इसमें जीवों का भी दोष नहीं है क्योंकि जब तक जीवन है तब तक कुछ न कुछ तो करते रहना ही पड़ेगा। वैसे भी कोई कब तक निष्क्रिय रह सकता है? कोई भी पूर्णरूप से इस संसार में निष्क्रिय नहीं रह सकता, यह प्रकृति का नियम है। अब प्रश्न यह उठता है कि जीव क्या करे? सतगुरू कहता है कि या तो सतगुरू की तरह सब कुछ करते हुए कुछ न करो अर्थात् निःस्वार्थ भाव से, अनासक्त भाव से कर्म करो तो उस कर्म का बोझ तुम पर नहीं होगा और तुम निश्चिंत रह सकते हो। या फिर तुम जो कुछ करो (मन, वचन, कर्म से) उसे अपने इष्ट को अर्पण करते चलो ऐसा करने से भी तुम्हारे ऊपर उन कर्मों का बोझ नहीं रहेगा। यह विश्वास करने की बात है और यह कोई आसान काम नहीं है। इसमें शिष्य को अपने सिर को भी कुर्बान करना पड़ता है। यहां सिर को कुर्बान करने का मतलब है अपने अहंकार को फना कर देना।

दुनिया में हर वस्तु की कीमत चुकानी पड़ती है। जो व्यक्ति जिस वस्तु के लिए जैसी कीमत चुकाएगा, वैसी ही उसकी कदर भी करेगा। यदि किसी को कोई वस्तु यूं ही मुफ्त में मिल जाती है तो वह उसकी कदर नहीं करता और इसलिए कभी–कभी वह वस्तु उसके लिए हानि का भी कारण बन जाती है।

तुम इस बात को दिल से निकाल दो कि दूसरे तुम्हें अच्छा समझें। क्यों अपने आपको दूसरों के हाथों बेचते हो? क्या तुम्हारे लिए इतना काफी नहीं कि तुमने दिल से बुराइयों को निकाल दिया है और तुम अपना कर्त्तव्य ठीक से निभा रहे हो।

अभय या निश्चिंत रहना साहस का काम है। कोई कामी, क्रोधी, लालची, ईर्ष्यालु व्यक्ति अभय नहीं रह सकता क्योंकि उसे दूसरों से और अपने आपसे सदा भय लगा रहता है। इसलिए आपको कोई भी चिन्ता नहीं करनी है, न राजा की, न प्रजा की, न देवता की, न दानव की, न कांग्रेस की, न अन्य किसी पार्टी की, न घर की न धाम की। अभय रहना एक ऐसी अद्‌भुत ताकत है, यह एक ऐसा भाव है जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। जब मन पूरी तरह से वैराग्य की स्थिति में आ जाता है तो मनुष्य उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है, जिसे अचिन्त अवस्था कह सकते हैं। भय हमें न जीने देता है और न मरने देता है, इसी प्रकार चिन्ता भी हमें न जीने देती है और न मरने देती है।

जब कोई तुम्हें कठोर वचन कहे या तुम्हारा अपमान करे तब तुम उन वचनों को सहन करो, उन पर प्रतिक्रया मत करो। यदि कोई तुम्हारा सगा संबंधी तुम्हें कड़वी बात कहे या उसने पहले कुछ कह दिया है तो, तुम उन बातों को भूल जाओ। उन्हें ताजा करके अपने आपको विचलित मत करो। यदि तुम ऐसा करनें में सफल हो जाते हो तो तुम नाम के अधिकारी हो अन्यथा तुम लाख सुमिरन भजन करते रहो तुम्हें नाम की प्राप्ति नहीं हो सकती। कबीर साहब कहते हैं–

'सहे कुशब्द वाद को त्यागे, छांड़े गर्व गुमाना।
सतनाम ताही को मिलिहै, कहे कबीर हम जाना।।'

जहां हुजूर शब्दानन्द जी महाराज एक नरम दिल इंसान थे वहीं वे अनुशासन और आचरण के मामले में सख्त मास्टर भी थे। एक बार उन्होंने अपने ही एक आचार्य से धुरपद धाम दुर्गापुर में ही सत्संग देते समय माइक इसलिए छीन लिया था क्योंकि वह सत्संग में इधर–उधर की बातें कह रहा था और उसके बाद आपने एक शब्द निकाला जो इस प्रकार था और फिर इसकी व्याख्या की–

'बेकार न समय व्यतीत करो,
नहीं समय मिला है गंवाने को।
इस जग में तुम आये हो,
अपना और औरों का काम बनाने को।।'

एक बार (दशहरा पर 2007 या 2008 में) उन्होंने सारे आचार्यों को अपने सामने बैठाकर आचार्यों को सत्संग दिया और समस्त सत्संगी उनके सत्संग तो सुन रहे थे लेकिन वे स्वयं आचायों की ओर मुखातिब थे। उस दिन किसी आचार्य ने सत्संग नहीं दिया था। वे दिल से चाहते थे कि उनके आचार्य उच्च कोटि के आचार्य बन कर सत्संगियों का उचित मार्गदर्शन करें।

एक बार होशियारपुर में (1998 में गुरू पूर्णिमा पर) जब किसी बात पर हुजूर शून्यो जी महाराज नाराज होकर मंच छोड़ कर चले गये थे तो सत्संगियों में हाहाकार मच गया उस समय वहां उपस्थित आचार्यों में से किसी से भी मंच का नियंत्रण नहीं हो पाया। उस समय केवल हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ही एक मात्र ऐसे आचार्य थे, जिन्होंने अपनी एक कविता (**'जगदम्बा के गर्भ निवासी हम सब जुड़वे भाई, सगे सहोदर का नाता है कैसी यहां लड़ाई।'**) का गायन करके न केवल सारी संगत तो शांत किया अपितु उन्हें अपने सत्संग से बहुमूल्य ज्ञान भी दिया।

यह तो मेरे शहंशाहे–आलम हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के भौतिक चरित्र की कुछ झलकियां है। समस्त झलकियां लिखने की क्षमता किसी में भी नहीं है। और उनके सत्य स्वरूप के बारे में तो कुछ भी नहीं कहा या लिखा जा सकता। एक बार उन्होंने अपने एक सत्संग में धुरपद धाम दुर्गापुर में ही एक आचार्य की ओर संकेत

करते हुए कहा था 'अपने गुरू को छोटा करने से बाज आओ।' मतलब कहने का यह है कि वे अपने आचार्यों को कठोर अनुशासन में रहने के लिए हमेशा ताकीद करते रहते थे। इसका एक कारण तो यह था कि उनका समस्त जीवन अनुशासन में ही बीता था और दूसरा कारण यह था कि वे अपने सत्संगियों का दर्द समझते थे और चाहते थे कि उनको सही मार्गदर्शन मिलता रहे।

एक बार की बात है (यह कथा सनातन धर्म के एक ग्रंथ पद्म पुराण में आती है) कि भगवती लक्ष्मी श्री हरि के चरणों की सेवा कर रहीं थीं और श्री विष्णु निष्णात् अपने आप में खोये हुये थे। श्री लक्ष्मी जी बीच में ही टोकते हुये उनसे बोलीं 'एक तरफ तो आपके इस रचित संसार में सभी प्राणी अपने–अपने कर्मों के कारण दुख–सुख भोग रहे हैं, दूसरी ओर उनके आधार होने के कारण उनका सब भार आपके ही ऊपर आता है तो आप इस प्रकार शान्ति की नींद कैसे सो सकते हैं?'

श्री विष्णु बोले, 'देवी! मैं नींद नहीं ले रहा हूं, बल्कि मैं तो ध्यान में व्यस्त हूं।' लक्ष्मी जी ने प्रतिप्रश्न किया, 'आप और ध्यान' आप किसका ध्यान करते हैं? समस्त संसार यहां तक कि महादेव भी आपका ध्यान करते हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। कृपया इसका समाधान कीजिए। श्री विष्णु बोले, 'देवी मैं अपने अन्दर स्थित अपने ही आत्मस्वरूप का ध्यान करता हूं और वहीं से ऊर्जा लेकर समस्त ब्रह्माण्ड़ का सृजन, पालन और संहार करता हूं। आत्मदेव ही 'केन्द्रस्य केन्द्रम्' है।' इस कथा से मैं सीधा सा मतलब यह निकालता हूं कि मेरे हुजूर जब अपने भौतिक जीवन के अन्तिम पड़ाव पर अपने पुत्र श्री दयाला राय के पास बलिया में चार वर्ष तक रहे तो मैंने स्वयं देखा कि वे भी हर समय आत्मदेव के ध्यान में ही निमग्न रहते थे, जिसे देखकर आम लोग समझते थे कि वे चैन की नींद ले रहे हैं। वे नींद लेना तो जानते ही नहीं थे, अपने जीवन में वे कभी चैन से नहीं सो पाये तो अन्तिम क्षणों में वे कैसे नींद ले सकते थे। नहीं, वे तो चैतन्य के साथ चेतनघन हो कर रहते थे।

रविन्द्र, अलीगढ़

श्री विरेन्द्र, बल्लभगढ़ के विचार
हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में

जो स्वयं शब्द का सागर है, जो स्वयं शब्द से निकला है, शब्द में ही रहता है और शब्द होता हुआ भी अशब्द है, उसको मैं शब्दों में कैसे व्यक्त कर सकता हूं। जहां पर समस्त ऋषि–मुनि, पीर–पैगम्बर, संत–महात्मा की सोच समाप्त हो जाती है वहां से मेरे मालिक की सोच शुरू होती है और फिर उसका कोई पारावार नहीं रहता। लेकिन यह उन्हीं की मौज है कि वे इस तुच्छ जीव से कुछ लिखवाना चाहते हैं। मैंने जो कुछ भी जाना है, जो कुछ भी समझा है, जो कुछ भी महसूस किया है सब कुछ मेरे गुरूदेव की कृपा से ही हुआ है और मैं धन्य हो गया। मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली मानता हूं कि मुझे हुजूर शब्दानन्द जी सद्गुरू मिल गये और मेरा लोक और परलोक सुधर गया। मेरा– उनका 9 वर्ष तक साथ रहा।

अपने जैसे नौजवान सत्संगी भाई–बहनों से कहता हूं कि 'गुरू क्या करता है' मेरे जीवन के अनुभव से पूछिये, गुरू कृपा क्या होती है, गुरू कैसे जीव का उद्धार करता है मेरे दिल से पूछिये। जो कुछ भी मैं लिख रहा हूं यह किसी सत्संग का हिस्सा नहीं है और न ही किसी किताब के पन्नों की नकल है, अपितु मेरे जीवन का कच्चा चिट्ठा है। मेरी 21 वर्ष की आयु में शादी हो गई थी। ग्रहस्थी को चलाने के लिए ठीक से कोई काम धन्धा नहीं था। ऊपर से भाइयों ने अपने से अलग कर दिया क्योंकि मेरी कमाई बहुत कम थी। मैं दुखी रहता था और बहुत परेशान रहता था। मेरी मां मुझे बहुत प्यार करती थी क्योंकि मैं सब भाईयों में सबसे छोटा था। मुझे दुखी देखकर वह भी दुखी होती थी।

मां व्यास के सत्संग में जाया करती थी और मुझसे भी कहती थी, 'बेटा सत्संग में चला कर।' लेकिन मेरी संगति भी खराब थी। कभी–कभी शराब भी पी लिया करता था। मन में क्रोध और अहंकार बहुत भरा था। मां सत्संग के लिए कहती तो मैं कह देता कि मां जो सत्संग में सुनाते हैं, मैं वह सब जानता हूं। एक दिन मां

के ज्यादा जोर देने पर मैं वहां चला गया। मैंने देखा वहां काफी लोग बैठे हुऐ थे, बड़ी–बड़ी गाड़ियां भी खड़ी थीं। मैंने विचार किया कि 'विरेन्द्र क्या ये सब लोग पागल है, जो अपना कीमती समय निकाल कर यहां आए हैं, कोई तो बात है।' हम भी सत्संग में बैठ गये और घ्यान से एकाग्रचित्त होकर सत्संग सुनने लगे।

उस सत्संग में कुछ ऐसी बातें भी कही गई थीं जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं। मुझे वहां जाना अच्छा लगा। मां ने पूछा, 'बेटा कैसा लगा सत्संग'! मैंने कहा मां अच्छा लगा, अब कब होगा? उसने कहा कि हर रविवार को होता है। बस फिर क्या था मैं हर रविवार को वहां सत्संग में जाने लगा और मेरी मानसिक एवं आर्थिक दशा भी सुधरने लगी। एक साल तक यही चलता रहा और मेरी गुरू से मिलने की तड़फ धीरे–धीरे बढ़ती गई, लेकिन उस सत्संग में गुरू से मिलने का कोई प्रबंध नहीं था।

इसी पशो–पेश में एक दिन मालिक की मौज हुई और मेरी मुलाकात श्री देशराज जी से हो गई (आजकल वे आचार्य के पद पर सुशोभित हैं और घाम पर ही रहते हैं, मैं जीवन भर उनके इस अहसान का आभारी रहूंगा)। हांलाकि वे मेरे सामने ही रहते थे परंतु इससे पहले इस संबंध में उनसे पहले कोई चर्चा नहीं हुई थी, उन्होंने मेरी बात सुनी और कहा कि अगर तुमको गुरू की जरूरत है, तो पलवल के पास दुर्गापुर गांव है, उसमें एक संत का आश्रम है, आप वहां चले जाओ, वहां आपको गुरू मिलेंगे। मैं अगले ही दिन गुरू की खोज में निकल पड़ा। घरवाली ने कहा, आज इतनी जल्दी कहां जा रहे हो? मैंने कहा कि किसी से मिलने जा रहा हूं, जरूरी काम है। उसने कहा थोड़ा नाश्ता लेते जाओ। मैंने कहा नहीं, भूख नहीं है।

उस समय मेरे पास कोई सवारी भी नहीं थी, सो बस से पलवल और वहां से दुर्गापुर पहुंच गया। वहां मैंने एक आदमी से पूछा कि भाई, यहां एक महाराज जी रहते हैं, उनका नाम शब्दानन्द है, मुझे उनसे मिलना है, कहां मिलेंगे? उसने कहा कि यहां ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रहता। आप जहां से आये हो वापस लौट जाओ। उसकी बातें सुनकर मुझे चक्कर आ गया और मैं खड़ा न रह सका

वहीं एक पेड़ के नीचे बैठ गया और रोने लगा। रोते–रोते मन में ख्याल आया, 'गुरूदेव क्या आपसे बिना मिले ही जाना पडेगा, क्या अभी दर्शन देने की मौज नहीं है!' तभी सामने से एक आदमी आया, मैंने झट से आंसूं पोंछे और उनसे कहा कि मैं बल्लभगढ़ से आया हूं एक संत से मिलना है, जिनका नाम शब्दानन्द है, क्या आप बता सकते हैं कि वे कहां मिलेंगे? उसने कहा आप सीधे चले जाओ, थोड़ी ही दूर पर बांए हाथ को एक छोटी सी सड़क मुड़ती है बस उस पर पहला आहाता ही उनका आश्रम है और वे वहीं मिलेंगे।

उसकी बात सुनकर मेरे मन में फिर से नया उत्साह पैदा हो गया और मैंने बड़ी कृतज्ञयता से उसको धन्यवाद दिया और आश्रम की ओर चला गया। आश्रम में पहुंचने पर सामने ही एक कुर्सी पर सफेद कपड़े पहने हुए और हाथ में किताब लिए हुए एक सिद्ध–पुरूष को देखा, उनके चारों ओर पक्षी दाना चुग रहे थे, उनमें मोर भी थे, फूलों पर तितलियां और भंवरे मंडरा रहे थे। उनके ललाट पर दिव्य आभा चमक रही थी। उनको देखकर ऐसा लगा कि किसी ने समय को बांध दिया हो। फिर क्या था? हाथ जोड़कर राधास्वामी कहकर उनके चरणों में सिर रख दिया और फूट–फूट कर रोने लगा। महाराज जी तो दया के सागर थे, उन्होंने मुझे अपने गले से लगा लिया। मैं उस समय तक ह्रदय से बिल्कुल खाली हो चुका था।। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा और कहाः

'गुरू धरा शीश पर हाथ क्यों फिकर करे।
गुरू रक्षा हर दम साथ क्यों न धीर धरे।'

बस फिर मन शांत हो गया। महाराज जी ने मेरा परिचय पूछा कि कहां से आए हो, क्या करते हो और मैंने सब कुछ बता दिया। सब कुछ सुनने के बाद महाराज जी ने कहा कि आपका काम बन जाएगा और आप सुखी हो आओगे, सत्संग में आया करो। महाराज जी ने फिर पूछा कि कहीं से नाम ले रखा है? मैंने कहा नहीं महाराज, मैं एक साल से व्यास के सत्संग में तो जाता रहा हूं, लेकिन न नाम मिला है और न ही गुरू मिला है, अब आप मिले हैं तो जैसा आप चाहें मैं आपकी शरणागत हूं। फिर वे मुझे अंदर ले

गये और सामने बैठा कर मेरे आंखों के मध्य अंगूठा लगाते हुए मुझे एक मंत्र दे दिया और कहा कि सुबह–शाम 15–15 मिनट इसका अजपाजाप किया करो और जिसको भी मानते हो उसके स्वरूप का ध्यान किया करो। उन्होंने यह नहीं कहा कि "मेरा ध्यान किया करो"। लेकिन मैं तो उनको गुरू धारण कर चुका था।

बस! यहां से आगे मेरे जीवन में अद्‌भुत् चमत्कार होने शुरू हो गये। नाम का निरंतर जाप चलता रहा, उसमें नागा नहीं करता था। मेरा आटो–वायरिंग का काम था जो मैं घर पर ही करता था और स्पेयर पार्टस की दुकानों पर बेचता था। उससे मुश्किल से गुजारा होता था। मेरा ध्यान–भजन का लक्ष्य भगवत् प्राप्ति नहीं था बल्कि रोटी था। कहते हैं 'भूखे भजन न होय गोपाला।' अब जिनको मैं माल सप्लाई करता था और वे ना–नुकुर करते थे अब वे ही एडवांस में आर्डर देकर माल खरीदते हैं। अब गुरू कृपा से एक प्लाट भी इंडस्ट्रियल ऐरिया में एलाट हो गया है और अपनी छोटी सी निजी फैक्टरी भी हो गई है।

कहने का तात्पर्य यह है कि गुरू के बताए हुए तरीके से चलते हुए मेरी सांसारिक और पारिवारिक अर्थात् अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष की सभी जरूरतें पूरी हो गईं। महाराज जी के सत्संगों से मेरा अन्तःकरण साफ हो गया। एक समय था कि मैं संसार की वस्तुओं के पीछे भागता था और अब संसार की वस्तुएं मेरे पीछे भागती हैं और मैं अनासक्त सा रहता हूं। 'चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह, जिनको कछु ना चाहिए वे शाहनशाह।' अब तो बस यही तमन्ना है कि गुरू–आज्ञा में रहता हुआ गुरू में गुम हो जाऊँ।

अपना बनाया गले लगाया, पूरे किये अरमान मेरे।
जान से प्यारे मेरे सतगुरू, ना भूलूं अहसान तेरे।।
मैं तो था चरणों की धूल, चंदन तूने बना दिया।
राह में पड़े पत्थर को तूने, शालिग्राम बना दिया। जान से
यह दुनियां जलता जंगल है, झर झर झरे अंगार।
ना होते सतगुरू मेरे, तो जल मरता संसार।। जान से....

शेष पेज 145पर

डा0 के. पी. सिंह, बल्लभगढ़ के विचार हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में

'सब धरती कागज करूं, लेखनी सब बनराय।
सात समुन्द्र की मसि करौं, गुरू गुन लिखा न जाय।।'
'आस कर गुरू की दया की, हो निराश न तू कभी।
जो निराश हुआ समझले, गुरू का दास न तू कभी।।'

इस दास पर हुजूर शब्दानन्द जी महाराज ने जो उपकार किये हैं, उनको शब्द–बद्ध नहीं किया जा सकता है। फिर भी इस अवसर पर अपना अनुभव (आप–बीती) कहे बिना रहा भी नहीं जा रहा। अतः उनके ही आदेश को वे ही मुझसे जो लिखवा रहे हैं टूटे–फूटे शब्दों में पेश करता हूं:–

ये नादान बच्चा अपने मां–बाप के संस्कारों पर चलते हुए, बचपन से ही पूजा–पाठी था। मां–दुर्गे, बाबा भोले नाथ, राधे–कृष्ण मेरे प्रिय देवता थे। दास कभी लम्बे व्रत करता तो कभी हरिद्वार से काँवर लाता, कभी गोवर्धन की परिक्रमा लगाता। यह सब लम्बे समय तक चलता रहा, लेकिन इतना कुछ करते हुए वैसे तो मन खुश रहता, लेकिन फिर भी अंतर में कुछ खालीपन महसूस होता था। समझ में नहीं आता था कि क्या किया जाए। खैर मालिक की मौज हुई, और दास तो यही कहेगा कि इन्हीं देवी–देवताओं की कृपा से इस नादान–नासमझ को हुजूर शब्दानन्द जी महाराज के चरणों में शरणागति मिल गई।

अब तो दुर्गापुर जाने का सिलसिला चालू हो गया। मेरा बाबा शब्दानन्द जी महाराज (मेरे आराध्यदेव) के साथ ज्यादा समय तो संबंध नहीं रहा फिर भी लगभग 8 वर्ष इस दास ने उनका सान्निध्य अवश्य प्राप्त किया। बाबा शब्दानन्द जी महाराज जिस समय दुर्गापुर धाम से बलिया के लिए जा रहे थे, उससे पहले दिन यह दास कुछ सत्संगियों के साथ बाबा से मिलने गया। बाबा से मिलकर यह दास बोला, 'गुरूदेव आप जा रहे हैं, आपके पीछे से हमारा क्या होगा? बाबा

बड़े तेज स्वर में बोले, "किसने कहा हम जा रहे हैं। हम हमेशा आप के साथ रहेगें, आप सब हो, हुजूर पुष्कर दयाल जी हैं यहां पर, और हम कहीं नहीं जा रहे।"

दास तो ये शब्द सुनकर अपने आपको रोक नहीं पाया और हिचकी लेते हुए गुरूदेव के चरणों में रोने लगा। मेरे सत्गुरू, मेरे मालिक, मेरे गोविन्द मुझे दुलारते रहे, दास उनके चरणों में रोता रहा, और बाबा 'बहुत अच्छे', 'बहुत अच्छे' ऐसा कहते रहे।

जब हुजूर शब्दानन्द जी महाराज को गए हुए काफी समय व्यतीत हो गया तो धीरे–धीरे उनका विरह, उनकी तन्हाई सताने लगी। मन में विचार आया कि गुरू के दर्शन के लिए किसी तरह बलिया चला जाए। अब ख्याल आया कि जांए कैसे? कभी उधर के इलाके में गये नहीं थे। तभी मालिक की दया से एक चमत्कार होता है। एक बिहार का रहने वाला व्यक्ति जो थोड़े समय से ही मित्र के रूप में मेरे सम्पर्क में आया था बोला, 'अपने घर बिहार जाना है।' दास कहने लगा कि 'मित्र जाना तो हमें भी था उस तरफ कहीं बलिया है, जहां हमारे गुरूदेव रहते हैं, हमें उनसे मिलने जाना है।' बस इतना कहना था कि उस सज्जन ने तत्काल हमारा टिकट कराया और अगले दिन बलिया जाने का प्रोग्राम पक्का बन गया। यह सब इतना जल्दी हुआ कि किसी को समझ ही नहीं आया कि कैसे और क्या हो गया? घर वाले कहने लगे कि एक थोडी सी मुलाकात वाले के साथ जा रहे हो क्या यह उचित है! दास बोला कि उचित और अनुचित तो अब गुरू को सोचना है।

कुछ दिन पहले दुर्गापुर के कुछ भक्तजन बलिया महाराज जी से मिलने गये थे, जब दास ने गुरूदेव की कुशल–क्षेम उनसे जाननी चाही तो उन्होंने कहा कि बाबा न तो किसी को देखते हैं, न किसी को पहचानते हैं और ना ही उन्हें अब कुछ याद है।

वह मित्र हमको पकड़कर दिल्ली से ट्रेन में बैठा कर पहले बिहार ले गया फिर अपनी मोटर साइकिल पर बलिया ले गया और हम दोनों गुरूदेव के दर्शन के लिए पहुंच गए। जब दास ने बताया कि बल्लभगढ़ से डा0 के. पी. सिंह मिलने आया है, तो गुरूदेव तुरंत

समझ गये और कहने लगे कि हम उनका इंतजार कर रहे थे, उनको जलपान कराओ, भोजन कराओ और जल्दी से हमारी मुलाकात कराओ।

दास का उनके परिवार के सभी लोगों ने बहुत अच्छा स्वागत–सत्कार किया और कुछ समय विश्राम के बाद बाबा जी के दर्शन प्राप्त हुए, जिसका बड़ी बेसब्री से इंतजार था। बाबा ने सभी की कुशल–क्षेम पूछी। दास ने बाबा को एक शब्द सुनाया। हुजूर ने आशीर्वाद से दास को ऊपर से नीचे तक सराबोर कर दिया। अब दास मन ही मन सोचने लगा कि मेरे गुरूदेव तो पहले जैसे ही हैं। यहां तो कोई बदलाव नजर नहीं आता (जैसा बताया गया था)।

मुझे लगता है कि यह सब मेरे गुरूदेव की लीला थी। सभी परिवार वाले कहने लगे कि आपके आने के कुछ समय पहले ही हुजूर ने आंखें खोली हैं। अब दास को विदाई लेनी थी क्योंकि वापस भी आना था, गाड़ी का समय हो चला था। मेरे गुरूदेव ने सभी को आशीर्वाद दिया और कह दिया कि हम हमेशा आपके अंग संग हैं, और सदा रहेंगे। मालिक ने राधास्वामी कहकर हमको विदा किया और दास ने बल्लभगढ़ पहुंच कर यह शब्द लिख डाला–

मुझे रोको नहीं प्यारे गुरू की याद आ रही है।
मुझे जाना गुरू के दर, वहां की ही तैयारी है।।
मैंने यह सोच रखा था, गुरू दर्शन को जाऊँगा।
मगर इतनी भी जल्दी क्या, गुरू ने मेरी बाट निहारी है। मुझे
मैंने गुरू दर्श पाकर के सभी का प्रणाम कह दीना।
बाबा ने आशीष दिया है, सभी पर दया हमारी है। मुझे..
बाबा से बात हो रही है, देख मेरी अंखियां रो रही हैं।
बाबा तो मेरे पहले जैसे हैं, कमी कोई नजर न आ रही है।
गुरू ने कह दिया मुझसे हम मिलने आयेंगे तुमसे।
समझ आती नहीं मुझको, गुरू की लीला न्यारी है। मुझे..
बाबा ने आदेश दिया है, सभी को प्यार से रहना है।
ज्ञान जो दे दिया के. पी. उसी पर बलिहारी है। मुझे...
गुरू सबका कल्याण करें! एक अकिंचित दास– के.पी.सिंह

आचार्य देशराज सिंह जी के विचार
हुजूर शब्दानन्द जी के बारे में

इस नाचीज पर मालिक की ऐसी मौज रही है, इसे प्रारब्ध कर्म कह भी कह सकते हैं, कि बचपन से ही मुझे संतों की सेवा का अवसर मिला। बचपन में ही मुझे (1960 में) परमसंत परमदयाल फकीर बाबा के चरणों में बैठने और उनकी सेवा करने का अवसर मिला। काफी दिनों तक मैंने श्री गोपाल दास जी के साथ में फकीर बाबा की सेवा की। मैं फकीर बाबा के साथ सत्संग टूर में भी कभी–कभी जाया करता था और दिल्ली में तो अक्सर उनके सत्संगों में हाजिर रहता था। इसी सिलसिले में मैंने पहली बार परम संत हुजूर मानव दयाल जी महाराज को 1963 में हिन्दू महासभा में देखा था। जब हुजूर मानव दयाल जी महाराज अपने गुरू बाबा फकीर का मिशन चलाने के लिए स्थाई रूप से भारतवर्ष आ गये तो मैं उनके साथ जुड़ गया। एक बार हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने मुझे अलीगढ़ व डिग्गी नहर पर जो सत्संग हुआ उसमें कहा कि डिग्गी दयाल धाम का सत्संग हर महीने आचार्य के0 पी0 वर्मा जी किया करेंगे और आपको यहां जरूर आना है, यहां की व्यवस्था और सत्संग का कार्य आपको समझना है। कुछ दिन वहां जज साहब श्री के0 पी0 वर्मा जी का सत्संग चलता रहा और मैं भी अपना फर्ज निभाता रहा। फिर मेरी टप्पल में पोस्ट–मास्टर के पद पर नियुक्ति हो गई। फिर मैं वहीं से आकर सतसंग की सेवा करने लगा।

यूं तो हुजूर शब्दानन्द जी महाराज से मेरी पहली मुलाकात होशियारपुर में बाबा फकीर के समय में ही हो गई थी और मैं उनके साथ कुछ दिन होशियारपुर में भी रहा, लेकिन उनसे गहन सम्पर्क हुजूर मानवदयाल जी के समय में ही हुआ। 2008 में मेरी पत्नी के स्वर्गवास के बाद तो मैं हुजूर शब्दानन्द जी के सानिध्य में अधिक से अधिक समय बिताने लगा। कई बार तो मैं आम सत्संगों के बाद धाम पर रूक जाता और महाराज जी की सेवा करता। इन अवसरों पर वे मुझे अलग से व्यक्तिगत सत्संग देते।

एक दिन उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, 'आप रात को मेरे साथ साधन में बैठना। इस तरह वे मुझे लगातार 10 दिन तक साथ में साधन में बैठाते रहे और इस प्रकार मेरे ऊपर अपार कृपा की और मुझे धन्य कर दिया। एक बार हुजूर शब्दानन्द जी महाराज, प्रेम एवं संतवर श्री मंगलदेव जी मेरे गांव भी गये थे और वहां पर संतवर श्री मंगलदेव जी और महाराज जी ने कहा कि अब आपकी कोई सांसारिक जिम्मदारी बाकी नहीं रह गई है, इसलिए आपको अब धाम पर ही रहना है। जब मैं धाम पर ही था, एक दिन संतवर मंगलदेव जी ने मुझे कहा कि आपको महाराज जी बुला रहे हैं। मैं गया तो महाराज जी ने हुक्म दिया कि आपकी पत्नी परमतत्व मालिक के पास जा चुकी है, अतः अब आप विरक्त हो। आप बहुत समय तक परमदयाल जी के साथ रहे हो और अब आपको ज्यादा समय धाम पर ही रहना है। (संतवर मंगल देव जी उस समय वहीं पर उपस्थित थे)। मैंने कहा, 'महाराज जी! यह बंधन हो जाएगा।' महाराज जी ने कहा, 'यह बंधन नहीं है, आप स्वतन्त्र हो। जब भी आप अपने गांव या सत्संग के लिए जाना चाहो तब खुशी से जा सकते हो। यही मेरी गुरूदक्षिणा है। आपको परमदयाल जी की शिक्षा को फैलाना है।' उसी समय से मैं हुजूर की आज्ञा का पालन करते हुए धाम पर रहता हूं और जो भी सेवा इस नाचीज से बन पा रही है, करता रहता हूं, अच्छी या बुरी–मालिक जाने।

मालिक सबका कल्याण करे। देशराज सिंह

पेज 140 का शेष भाग.....

आज से पहले क्या जीवन था, कभी रोया कभी घबराया।
जब से तेरी शरण में आया, जीवन धन्य हुआ मेरा।। जान से
तीर्थों में महातीर्थ तुम्हीं हो, इतनी शांति न और कहीं है।
इसके पावन परिसर में हम, पाते चारों धाम यहीं हैं। जान से
अब मौजों के दिन आए, पाकर तुमको सब कुछ पाया।
बिल बोले सब बता रही है, चेहरे की मुस्कान मेरे।। जान से
गुरूदेव सबका कल्याण करें! विरेन्द्र, बल्लभगढ़

अपील

अखण्ड मानवता प्रतिष्ठान संस्थान से जुड़े सभी सत्संगी भाईयों और बहनो को सूचित किया जाता है कि वर्तमान समय में आपका यह संस्थान आर्थिक परेशानियों से जूझ रहा है। अतः आप सब मिलकर इस संस्थान की आर्थिक सहायता के लिए आगे आंए। वैसे तो जिसका यह धाम है वह मालिक पूर्ण सक्षम है, लेकिन वह आप जैसे श्रद्धालुओं के माध्यम से ही सहायता करता है। आजकल विशेष कारणों से बाहर के सत्संग कार्यक्रम भी आयोजित नहीं हो पा रहे हैं। अतः प्रतिदिन के खर्च के लिए भी समस्या बढ़ती जा रही है। पिछले कुछ दिनों से कुछ सम्मानित सत्संगी आपसी सहयोग राशि देकर इस संस्थान की बहुत मदद कर रहे हैं, लेकिन अब वह धन राशि भी अपर्याप्त पड़ती जा रही है। यदि ऐसे ही हालात चलते रहे तो इस त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी बंद करना पड़ सकता है।

जो श्रद्धालु गण अखण्ड मानवता प्रतिष्ठान संस्थान को, जो आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं जन कल्याण के कार्य में संलग्न है, अपना बहूमूल्य अंशदान देना चाहते हैं वे नकद धनराशि आचार्य श्री देशराज जी, या श्री नरेश शर्मा, जन0 से0, धुरपद धाम, दुर्गापुर को देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं। जो सज्जन बाहर से चैक द्वारा या निफ्ट या आरटीजीएस द्वारा पैसा भेजना चाहें वे ओरियंटल बैंक आफ कार्मस, फरीदाबाद शाखा में अपना योगदान इस खाता संख्या में भेज सकते हैं और बैंक द्वारा जारी की गई रसीद की कापी श्री देशराज जी को भेजकर धाम द्वारा जारी की गई रसीद प्राप्त कर सकते हैं। खाते का नाम COSMIC HUMANITY FOUNDATION TRUST ACCOUNT NO. 00181010015120, IFSC CODE ORBC0100018.

जनरल सेक्रटरी, धुरपद धाम, दुर्गापुर

धुरपद धाम दुर्गापुर से सम्बद्ध आचार्यों की सूची फोन सहित

क्र.	स.	नाम	टेलीफोन न0.
1.		श्री गजेन्द्र पाल सिंह त्यागी, मेरठ	9634067530
2.		श्री अरविन्द परासर, होशियारपुर	9356544900
3.		श्री बी0 एम0 कौशल, होशियारपुर	9417176056
4.		श्री गुरू प्रसाद जी, दुर्गापुर	9968373403
5.		श्री क्रिस्ट्य्या नेतम, महाराष्ट्र	
6.		श्रीमति रत्ना पंड़ित, नई देहली	8130991017
7.		श्री रविन्द्र जी, अलीगढ़	8534977911
8.		श्री केदार लाल गौड़, छैरा (मुरैना), म.प्र.	9098435098
9.		श्री राजेश गुप्त, गाजियाबाद	9268105830
10.		श्री देशराज जी, (वर्तमान,दुर्गापुर धाम)	9012925932
11.		श्री अजय कपिला जी, संतोषगढ़ हि.प्र.	9318657478
12.		श्री श्याम लाल शर्मा, सादपुर सोनीपत	9991820657
13.		श्री आनन्द प्रकाश त्यागी, गाजियाबाद	9990152270
14.		श्रीमति निर्मला, फरीदाबाद	9873411334

(इस बार गुरूपूर्णिमा के अवसर पर कुछ सत्संगियों ने निवेदन किया था कि यदि सभी आचार्यों के नाम और टेलीफोन नम्बर प्रकाशित कर दिये जांय तो इससे उन्हें व अन्य जिज्ञासुओं को अति सुविधा होगी। इस विषय में परम संत हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने भी अपने समय में मानव मंदिर मासिक पत्रिका में उस समय के आचार्यों के नाम और पते सत्संगियों की सुविधा के लिए प्रकाशित करवाये थे। —जनरल सेक्रेटरी)

महत्वपूर्ण सूचना

यह पत्रिका जनवरी 2015 के बाद केवल उन्हीं सज्जनों को भेजी जाएगी जो इसे प्राप्त करने के लिए अपना आवेदन जनरल सेक्रेटरी धुरपद धाम दुर्गापुर को 31. 12.2014 तक नाम, पता और पिन कोड़ के साथ भेज देंगे।

धुरपद धाम में आगामी सतसंग सूचना

तिथि एवं कार्य–क्रम

क्र.स.	दिनांक	समारोह विवरण	सतसंग का समय
1.	5 सितम्बर 14 शुक्रवार	परमपूज्य मानव दयाल जी महाराज का प्रकाशोत्सव	प्रातः 10 से 1 बजे तक
2.	2 अक्टूबर 14 वृहस्पतिवार	दशहरा सतसंग	प्रातः 10 से 1 बजे तक सांय 7 से 9 बजे तक
3.	3 अक्टूबर 14 शुक्रवार	दशहरा सतसंग	प्रातः 10 से 1 बजे तक
4.	14 नवम्बर 14	परमसंत परम दयाल जी महाराज का जन्म दिवस	प्रातः 10 से 1 बजे तक
5.	23 फरवरी 15 सोमवार	परम पूज्य मानव दयाल जी महाराज का जन्म दिवस	प्रातः 10 से 1 बजे तक
6.	13 अप्रेल 15 सोमवार	वैसाखी महोत्सब	प्रातः 10 से 1 बजे तक

स्वामित्व–अखण्ड मानवता मंदिर प्रतिष्ठान न्यास पलवल
हथीन रोड़, दुर्गापुर, जिला पलवल, हरियाणा 121102
संपादक मंडल– श्री प्रेम सुख, श्रीमति मंजू शर्मा
मुद्रक–पी0 एस0 प्रींटर्स बल्लभगढ़ जिला फरीदाबाद हरियाणा
प्रकाशक–जनरल सेक्रेटरी, अखण्ड मानवता मंदिर प्रतिष्ठान
न्यास पलवल हथीन रोड़, दुर्गापुर, जिला पलवल,
हरियाणा 121102 फोन न0 **09991464747**

ट्रस्ट अपने पूर्व व वर्तमान संत सत्गुरूओ के विचारों के प्रति समर्पित है। शेष लेखकों के विचार व्यक्तिगत हैं, उनसे सहमति अनिवार्य नहीं है।

Visit us on:
www.akhandmanavtadham.in